95

सत्यमेव जयते

भारत का विधि आयोग

पचानवीं रिपोर्ट

उच्चतम न्यायालय में संवैधानिक खण्ड

एक प्रस्ताव

मार्च, 1984

349.541
M4,2

विषय-सूची

		पृष्ठ
अध्याय 1	परिचायक	1
अध्याय 2	प्रश्नावली और उत्तर	3
अध्याय 3	संवैधानिक न्यायनिर्णयन	6
अध्याय 4	संविधान का संशोधन	19
अध्याय 5	यूरोप में संवैधानिक न्यायालय	22
अध्याय 6	सिफारिशें	29
परिशिष्ट	भारतीय विधि आयोग प्रश्नावली	34

84 M/J(N)175MofLJ&CA –1

अध्याय 1

परिचायक

1.1 इस रिपोर्ट का सम्बन्ध जिस विषय से है वह देश की न्यायिक पद्धति में आधारभूत महत्व का एक विषय है और संवैधानिक विवादों का अवधारण करने में प्रत्यक्ष रूप से सुसंगत है। संक्षेप में कह सकते हैं कि जिस प्रश्न पर विचार किया जाना प्रस्तावित है वह यह है कि क्या भारत के उच्चतम न्यायालय में एक ऐसा संवैधानिक खण्ड सृजित करने की आवश्यकता है जो अनन्य रूप से लोक-विधि के मामलों पर या अधिक सीमित रूप से केवल संवैधानिक मामलों पर विचार करे। भारत के विधि आयोग ने इस विषय पर विचार करने का निश्चय इसके महत्व को ध्यान में रखकर स्वयं किया है। **विस्तार और मूलरूप।**

1.2 इस प्रकार की जांच करने के विस्तारपूर्ण कारणों का उल्लेख आगे सम्यक् अनुक्रम में किया जाएगा[1]। यहां पर इतना कह देना पर्याप्त होगा कि देश में संवैधानिक न्यायनिर्णयन के बढ़ते हुए महत्व को देखते हुए इस विषय पर विचार करने का निश्चय किया गया है। कोई भी विचारवान छात्र, जिसने पिछले दशक में उच्चतम न्यायालय के समक्ष मुकद्दमों के ढंग का और ऐसे विवादों में विचारणीय प्रश्नों की प्रकृति का अध्ययन किया है, वह इस बात से सहमत होगा कि गुण और मात्रा दोनों की दृष्टि से संवैधानिक न्यायनिर्णयन ने अपना अलग स्थान बना लिया है। ऐसी बात नहीं है कि संविधान के निर्माताओं ने इस विकास की कल्पना नहीं की थी। उन्होंने यह सुनिश्चित कर दिया था कि संविधान के निर्वचन से संबंधित प्रश्न को उच्चतम न्यायालय में उठाने के लिए अनुमति अवश्य मिलनी चाहिए, चाहे ऐसे विवाद या मुकद्दमे का, जिसमें इस प्रकार का प्रश्न हो, स्वरूप या भाग कैसा भी हो। उन्होंने यह सुनिश्चित कर दिया था कि उच्चतम न्यायालय में ऐसे न्यायधीशों की, जो इस प्रकार के प्रश्नों की सुनवाई और उनका विनिश्चय करने के लिए एक साथ बैठेंगे, न्यूनतम संख्या पांच होगी। उन्होंने इस बात पर भी ध्यान दिया था कि संविधान के जिस भाग में केन्द्र और राज्यों के बीच प्रभुता के वितरण की चर्चा है उसका प्राधिकृत निर्वचन उच्चतम न्यायालय द्वारा अवश्य कर दिया जाना चाहिए और यदि ऐसा कोई विवाद केन्द्र और राज्यों के बीच या परस्पर राज्यों के बीच उठता है तो उस विवाद का, यदि वह न्यायालय में विचार योग्य है तो, निपटारा केवल उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी उपबन्ध करने की सावधानी बरती थी कि संविधान के जितने भाग द्वारा नागरिकों को या गैर-नागरिकों को (कुछ दशाओं में) मूल अधिकार प्रदान किए गए हैं, उतने भाग उच्चतम न्यायालय के समक्ष समुचित कार्यवाहियों के माध्यम से प्रवर्तनीय होने चाहिए। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि संविधान के निर्माताओं ने इस बात के लिए चिन्ता प्रकट की थी कि संवैधानिक विवाद किसी न किसी रूप में उच्चतम न्यायालय के समक्ष आना चाहिए और उसी फोरम (न्यायालय) में कम से कम कितने न्यायधीशों द्वारा उस विचार पर विचार किया जाना चाहिए। **संवैधानिक न्यायनिर्णय और उसका महत्व।**

1.3 हमारी संसद् ने संविधान के निर्माताओं की इस चिन्ता की अनदेखी नहीं की कि संवैधानिक प्रश्नों के अवधारण के लिए समुचित तंत्र (मशीनरी) होना चाहिए। संविधान के लागू होने के तुरन्त पश्चात् संसद् ने संवैधानिक न्यायनिर्णयन के महत्व के प्रति अपनी जागरूपता प्रक्रिया सम्बन्धी दो संहिताओं का संशोधन करके प्रकट की जिनमें यह उपबन्ध किया कि यदि ऐसे प्रश्न उच्च न्यायलय के अधीनस्थ न्यायालयों में उठतें हैं तो उनका अवधारण करने के लिए उन्हें उच्च न्यायालय के समक्ष अवश्य लाया जाना चाहिए चाहे उस मुकदमे का, जिसमें ऐसा प्रश्न उठता है, स्वरूप कैसा भी हो। **संसदीय दृष्टिकोण।**

1.4 संविधान के निर्माताओं ने और हमारी संसद् ने संवैधानिक विवादों के प्रति जो चिन्ता प्रकट की है उसमें यह अन्तर्निहित उपधारणा है कि ऐसे विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए फोरम (न्यायाधीश) और तंत्र (मशीनरी) पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना आवश्यक है। विधान के प्रत्येक छात्र को जल्दी या बाद में यह महसूस होने लगता है और कानूनों या संवैधानिक उपबन्धों के निर्वाचन से सरोकार रखने वाला प्रत्येक कृत्यकारी अपने आप यह अनुभव करता है कि ये उपधारणाएं क्या हैं। इसलिए इन उपधारणाओं को कभी विस्तार से बहुत से शब्दों में नहीं बताया जाता। इनको लम्बे वाक्यों में स्पष्ट नहीं किया जाता। वास्तव में इन उपधारणाओं को विस्तार से स्पष्ट करने की आवश्यकता ही नहीं है। बिना बोले गए ये आधारतत्व उतना ही गुंजायमान है जितने कि बोले गए शब्द। **अन्तर्निहित उपधारणा।**

---

1. आगे अध्याय 3।

आगे और जांच की जाने की आवश्यकता।

1.5 इन अन्तर्निहित उपधारणाओं पर, जिनको सदैव स्वत: व्यक्त माना जाता है, इस बात पर विचार करते समय ध्यान देने की आवश्यकता है कि क्या ऐसे विकास के लिए, जिसके बारे में हम ऊपर कह चुके हैं,[1] संवैधानिक न्यायनिर्णयन के फोरम (न्यायालय) और तन्त्र (मशीनरी) के क्षेत्र में किन्हीं और अन्य उपबन्धों की आवश्यकता है ? इस रिपोर्ट का ठीक-ठीक यह व्यापक उद्देश्य है।

विवाद्यक।

1.6 इस परिचायक अध्याय में उन विवाद्यकों को बताना आवश्यक नहीं है जिन पर इस वर्तमान जांच में, जिसके व्यापक उद्देश्य का उल्लेख पिछले पैरा में किया गया है, विचार करना आवश्क है। इन विवाधकों की चर्चा इस रिपोर्ट के आगामी अध्यायों में की गई है और अन्तिम अध्याय में उनके बारे में सिफारिशें की गई हैं[2] । किन्तु हम यह स्पष्ट कर देना चाहेंगे कि इस वर्तमान जांच का उद्देश्य न्यायपालिका की केवल पुन: संरचना करने के लिए उसकी पुन: संरचना के बारे में सुझाव देना नहीं है। इस जांच का यह भी उद्देश्य नहीं है कि केवल परिवर्तन करने के लिए कोई अन्य परिवर्तन करने का सुझाव दिया जाए। इस जांच का आशय इस बात की जांच करनी है कि संवैधानिक न्यायनिर्णयन के संदर्भ में जब उन पर ऐसे न्यायनिर्णयन के बढ़ते हुए महत्व और समाज की आवश्यकताओं को दृष्टि में रख कर विचार किया जाता है तब ये अन्तर्निहित उपधारणाएं कहां तक ऐसे न्यायनिर्णयन की प्रक्रिया की दक्षता में सुधार करन के लिए अन्य तरीकों को निकालना वांछनीय बनाती है।

के सेले के-प्रश्नावली।

1.7 अभिलेख (रिकार्ड) के लिए इस बात का कथन कर दिया जाए कि इस रिपोर्ट को तैयार करने से पहले विधि आयोग ने उच्चतम न्यायालय के कार्य करने और उच्चतर न्यायपालिका के कुछ अन्य पहलुओं के बारे में विचार जानने के उद्देश्य से एक प्रश्नावली प्रकाशित की थी[3] । यहां इस अवसर पर हम उन सब को, जिन्होंने लगभग प्रत्येक प्रश्न पर विस्तार से अपने विचारों को प्रकट करने के लिए बहुत परिश्रम किया है, विशेष रूप से अपना आभार प्रकट कर रहे हैं।

हम यहां इस बात का भी उल्लेख कर दें कि हमने प्रश्नावली के बारे में संविधान के विख्यात वकील डा० एडवर्ड मैकह्विनी के विचार निश्चित रूप से जान लेने का भी लाभ उठाया है। डा० मैकह्विनी अभी हाल ही में भारत आए थे जिससे हमने इस अवसर का लाभ उठाया। वे आयोग के सदस्य-सचिव से मिलने के लिए और प्रश्नावली में पूछे गए विभिन्न प्रश्नों के बारे में अपने बहुमूल्य विचार आयोग के पास भेजने के लिए समय निकाल सके। जैसा कि भली भांति ज्ञात है, डा० मैकह्विनी ने तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में संवैधानिक न्यायनिर्णयन और संवैधानिक न्यायालयों के बारे में विशेष अध्ययन किया है। इसमें उन्होंने जो कष्ट उठाया है उसके लिए हम उनके प्रति आभारी हैं।

हमारा यह भी सौभाग्य था कि यूगोस्लाविया के संवैधानिक न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री एलैक्जैंडर फेरा हमारे पास थे, जो अभी हाल में ही नई दिल्ली आए थे। न्यायमूर्ति श्री फरा ने आयोग के सदस्यों के साथ कुछ समय व्यतीत करने की और यूगोस्लाविया के संवैधानिक न्यायालय की संरचना और कार्य करने की प्रणाली के बारे में बताने की कृपा की थी। यद्यपि समय की कमी के कारण उनसे यह अनुरोध करना सम्भव नहीं था कि वे हमारी प्रश्नावली में पूछे गए प्रश्नों का उत्तर दें फिर भी हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि उन्होंने इन समस्याओं के बारे में, जिनकी चर्चा प्रश्नावली में की गई थी, गहरी दिलचस्पी दिखलाई।

प्रश्नावली में जो प्रश्न उठाए गए हैं उनमें से कुछ प्रश्नों का सम्बन्ध न्यायनिर्णयन के तंत्र (मशीनरी) से है और वर्तमान रिपोर्ट को उपर्युक्त प्रश्नावली के प्राप्त उत्तरों को दृष्टि में रखकर तैयार किया गया है। प्रश्नावली के जो उत्तर प्राप्त हुए हैं उनमें उठाई गई महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख तो वास्तव में समुचित स्थान पर बाद में किया जाएगा[4] । उक्त प्रश्नावली में उठाए गए अन्य विवाद्यक इस रिपोर्ट के क्षेत्र के बाहर हैं। यह रिपोर्ट उच्चतम न्यायालय में संवैधानिक खण्ड के सृजन के प्रश्न तक ही सीमित है।

सीमित विस्तार।

1.8 यह कहनें की आवश्यकता नहीं है कि वर्तमान रिपोर्ट में उच्चतम न्यायालय की समस्त अधिकारिता की या उसके कार्य करने की प्रक्रिया और ढंग की चर्चा करना तात्पर्यित नहीं है। इसका विस्तार सीमित है, जैसा कि पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है[5] ।

तुलनात्मक सामग्री।

1.9 अन्त में हम इस बात का उल्लेख कर दें कि आगामी अध्याय में हम कुछ चुने हुए देशों में संवैधानिक न्यायनिर्णयन से सम्बन्धित तुलनात्मक स्थिति की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं[6] ।

---

1. पिछला परा 1.2।
2. आगे अध्याय 8।
3. भारत के विधि आयोग द्वारा प्रकाशित प्रश्नावली—देखिए परिशिष्ट 1।
4. आगे अध्याय 2 और 4।
5. पिछला पैरा 1.2 और 1.7।
6. आगे अध्याय 5।

अध्याय 2

प्रश्नावली और उत्तर

2.1 विधि आयोग ने जो प्रश्नावली प्रकाशित की थी[1] उसके उत्तर म अन्य बातों के साथ-साथ इस प्रश्न पर भी विचार मांगे गए थे कि क्या संवैधानिक प्रश्नों का विनिश्चय करने के लिए एक संवैधानिक न्यायालय सृजित करना चाहिए ? प्रश्नावली के जो उत्तर प्राप्त हुए हैं—उनमें से अधिकांश—संवैधानिक न्यायालय के सृजन के पक्ष में नहीं है। किन्तु बहुत से उत्तर उच्चतम न्यायालय में एक संवैधानिक खण्ड के सृजन के पक्ष में है या उन उत्तरों में ऐसे सुझाव दिए गए हैं जो पर्याप्त रूप में इसी प्रकार की विचारधारा के अनुकूल हैं। यह स्वाभाविक है कि किसी भी प्रश्नावली के उत्तर उन बातों को विस्तार से नहीं बतलाते जो उन उत्तरों में कही जाती हैं। किन्तु इन उत्तरों में जो राय व्यक्त की गई है वह मोटे तौर पर इस बात का समर्थन करती है कि ऐसे खण्ड का सृजन किया जाना चाहिए जिसे उच्चतम न्यायालय में उठाए जाने वाले संवैधानिक विवादों के अवधारण करने का कार्य अनन्य रूप से सौंपा जाए[2]। प्रश्नावली।

संवैधानिक विवादों पर विचार किए जाने के लिए पृथक् न्यायालय के सृजन के विचार के प्रति प्रकट किए गए कड़े विरोध को ध्यान मे रखकर इस विचार की चर्चा इस रिपोर्ट में आगे नहीं की गई है। आयोग को इस बात की भी जानकारी है कि इस प्रकार के किसी प्रस्ताव से ऐसे विस्तारपूर्ण और जटिल प्रकृति के संरचनात्मक परिवर्तन करने पड़ेंगे जो उच्चतम न्यायालय में ही, जैसा कि उसका वर्तमान ढांचा है, संवैधानिक और असंवैधानिक मामलों पर विचार किए जाने के लिए पृथक् खण्डों के सृजन के प्रस्ताव से किए जाने वाले आवश्यक परिवर्तनों की अपेक्षा अधिक होंगे।

वास्तव में, आयोग ने ऐसे खण्डों के सृजन की साध्यता का (पृथक् न्यायालय के सृजन की अपेक्षा) पता लगाने में और इस विषय के पक्ष तथा विपक्ष के मुद्दों की जांच करने में उस राय को बहुत महत्व दिया है जो प्रश्नावली के उत्तर में ऐसे खण्डों के सृजन के पक्ष में प्रकट की गई है।

2.2 जैसा कि पहले कहा गया है[3], उच्चतम न्यायालय में संवैधानिक खण्ड होने के विचार के पक्ष में ऐसे अनेक व्यक्ति और निकाय हैं जिन्होंने प्रश्नावली का उत्तर भेजा है या ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने इस विषय पर अपना विचार प्रकट किया है (यद्यपि विधि आयोग को औपचारिक रूप से पत्रादि भेज कर नहीं)। वे एक "संवैधानिक खण्ड", "संवैधानिक स्कन्ध (विंग)" या "शाखा" के सृजन के पक्ष में हैं। इनमें निम्नलिखित व्यक्ति और विभाग आदि हैं :— उच्चतम न्यायालय में संवैधानिक खण्ड के सृजन के पक्ष में उत्तर।

(क) उच्चतम न्यायालय का एक सेवानिवृत न्यायाधीश[4],

(ख) उच्च न्यायालयों में आसीन दो मुख्य न्यायमूर्ति[5],

(ग) उच्च न्यायालयों में आसीन दो न्यायाधीश[6],

(घ) उच्च न्यायालय का एक सेवानिवृत न्यायाधीश[7],

(ङ) एक राज्य का विधि विभाग[8],

---

1. पिछला पैरा 1.7।
2. जो ऐसे खण्ड के सृजन के पक्ष में हैं उनकी सूची के लिए कृपया आगे का पैरा 2.2 देखिए।
3. पिछला पैरा 2.1।
4. विधि आयोग संकलन, पृष्ठ 1/2 और 1/3 (हिन्दी 8 फरवरी, 1982)।
5. विधि आयोग संकलन पृष्ठ 1/88 और 1/143।
6. विधि आयोग संकलन, पृष्ठ 1/153 और 1/154 (इनमें से एक ने सात न्यायाधीशों के संवैधानिक खण्ड का सुझाव दिया है)।
7. विधि आयोग संकलन, पृष्ठ 1/4 (हिन्दू, 8 फरवरी, 1982)।
8. विधि आयोग संकलन पृष्ठ 1/102।

(च) विधान सभा का एक सदस्य[1],

(छ) एक प्रख्यात अर्थशास्त्री[2],

(ज) एक शैक्षणिक वकील[3], (जो उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता को संवैधानिक मामलों और लोकहित के मुकद्दमों के लिए ही सीमित करना और इन दो विषयों में से प्रत्येक के लिए एक-एक स्थायी न्यायपीठ बनाया जाना चाहेंगे,

(झ) वकीलों का एक संगम (एसोसिएशन)[4] (जिसने एक ऐसा नियमित संवैधानिक न्यायपीठ बनाए जाने का सुझाव दिया है जिसमें मुख्य न्यायमूर्ति सहित पांच ज्येष्ठतम न्यायाधीश हों),

(ञ) वाणिज्य और व्यापार मंडल (चैम्बर आफ कामर्स एण्ड इन्डस्ट्री) का एक सचिव[5] (जिसने कम से कम सात न्यायाधीशों के संवैधानिक न्यायपीठ के लिए सुझाव दिया है)

(ट) थोड़े से अधिवक्ता[6] (एडवोकेट),

(ठ) एक अधीनस्थ न्यायिक अधिकारी[7],

(ड) कुछ अन्य व्यक्ति[8],

प्रश्नावली से उत्पन्न मुद्दों के बारे में कुछ स्पष्टीकरण।

2.3 प्रश्नावली के कुछ उत्तरों में इस बात के लिए चिन्ता प्रकट की गई है कि भारत में न्याय-प्रशासन के शीर्ष (एपैक्स) स्थान पर भारत के उच्चतम न्यायालय[9] को बना रहना चाहिए और ऐसा कोई भी काम नहीं किया जाना चाहिए जिससे उच्चतम न्यायालय की एकता और अखंडता पर प्रभाव पड़े। हम इस चिन्ता की बड़ी सराहना करते हैं और यह स्पष्ट कर देना चाहेंगे कि इस रिपोर्ट में जो विचार प्रकट किए गए हैं उनका आशय उच्चतम न्यायालय की हैसियत को किसी भी रीति से कम करना नहीं है, बल्कि वर्तमान जांच का एकमात्र उद्देश्य ऐसे उपायों का सुझाव देना है जो न्यायिक कामकाज के निपटारे की उच्च गुणात्मकता को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं। आगे वर्णित[10] विस्तारपूर्ण विवाद्यकों को देखने से पता चलेगा कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की अर्हताओं और उनकी नियुक्ति के तरीकों में कोई परिवर्तन करने का प्रश्न नहीं है, सिवाय ऐसी बातों के जो संवैधानिक मामलों के लिए उच्चतम न्यायालय में पृथक खण्ड के सृजन के परिणामस्वरूप नितान्त आवश्यक है[11]।

बकाया मामलों का प्रश्न

2.4 हम इस बात का भी उल्लेख कर दें कि आयोग द्वारा प्रकाशित प्रश्नावली के बारे में, जो बड़े व्यापक क्षेत्र[12] के विषय में है, विधिज्ञ वर्ग (बार) के एक बहुत ही विख्यात सदस्य[13] ने यह टिप्पणी की है कि आयोग को विधिक कार्यवाहियों में तेजी लाने के संबंध में कोई जांच संवैधानिक न्यायालय स्थापित करने के प्रश्न पर नहीं करनी चाहिए।

प्रश्नावली के बारे में यह भी टिप्पणी की गई है कि विलम्ब की बुराइयों को दूर करने के लिए साधारण उपाय उपलब्ध हैं इसलिए हमारे संविधान में दूर व्यापी परिणाम वाले संशोधन नहीं किए जाने चाहिए। हम इस दृष्टिकोण का बहुत आदर करते हैं और इस दृष्टिकोण की सराहना करते हैं कि संवैधानिक संशोधन हल्केपन से नहीं किए जाने चाहिए।

---

1. विधि आयोग संकलन, पृष्ठ 1/93।
2. विधि आयोग संकलन, पृष्ठ 1/10।
3. विधि आयोग संकलन, पृष्ठ 1/137।
4. विधि आयोग संकलन, पृष्ठ 1/139।
5. विधि आयोग संकलन, पृष्ठ 1/152।
6. विधि आयोग संकलन, पृष्ठ 1/6 से लेकर 1/8 तक, 1/98 से लेकर 1/100 तक, 1/121 और 1/132।
7. विधि आयोग संकलन, पृष्ठ 1/153।
8. विधि आयोग संकलन, पृष्ठ 1/9, 1/11 और 1/90।
9. विधि आयोग संकलन, पृष्ठ 1/18 (एक आसीन मुख्य न्यायालय)।
10. आगे अध्याय 6।
11. आगे पैरा 6.8।
12. पिछला अध्याय।
13. विधि आयोग संकलन, पृष्ठ 1/156 (श्री एच० एम० सीरवाई)।

जांच का उद्देश्य ।

2.5 हम इस प्रक्रम पर यह अभिलिखित करना चाहेंगे कि संवैधानिक खण्ड के सृजन की सम्भाव्य आवश्यकता की जांच का मुख्य उद्देश्य बकाया मामलों की कमी करने के उपाय सुझाना नहीं है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम यह पूर्वानुमान करते हैं कि संवैधानिक खण्ड के सृजन से उच्चतम न्यायालय में बकाया मामलों की कमी करने में कुछ हद तक मदद मिलेगी । किन्तु इस उद्देश्य से उच्चतम न्यायालय में पृथक् खण्ड बनाए जाने का विचार प्रस्तुत नहीं किया गया है । मूलत: यह विचार इस उद्देश्य की पूर्ति[1] के लिए है कि संवैधानिक न्यायनिर्णयन की कुछ विशेष बातें होती हैं जिन्हें न्यायिक प्रक्रिया को अपनी संरचना और दृष्टिकोण में अवश्य परिलक्षित करना चाहिए ।

जहां तक संवैधानिक संशोधन की बात है हम इस बात के लिए चिन्तित हैं कि साधारण बात की तरह इसकी सिफारिश नहीं करनी चाहिए फिर भी यदि संवैधानिक खण्ड के सृजन का प्रस्ताव कार्यान्वित किया जाना है तो ऐसा संशोधन अनिवार्य प्रतीत होता है[2] ।

क्या भारत में संवैधानिक परिषद् का सृजन साध्य है ?

2.6 हमारी प्रश्नावली के उत्तर में एक संवैधानिक परिषद् सृजित करने का एक सुझाव आया है, जैसा कि फ़्रांस में है । कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक सेवानिवृत न्यायाधीश ने यह सुझाव दिया है[3]। किन्तु सावधानी से विचार किए जाने पर यह ऐसा विचार प्रतीत नहीं होता है जिसे भारतीय संविधान में सम्मिलित किया जा सके । फ्रांस की संवैधानिक परिषद् की संरचना और कृत्य[4], जिस रूप में उनकी परिकल्पना फ्रांसीसी संविधान में की गई है, के प्रवर्तन की रीति भारत में समस्त संवैधानिक पद्धति, से मेल नहीं खाती । फ्रांस को इस परिषद् का सृजन इस कारण करना पड़ा कि फ्रांसीसी संविधान में संवैधानिक प्रश्नों का अवधारण न तो साधारण न्यायालयों द्वारा, जिनकी क्रमबद्ध श्रेणी में सर्वोच्च स्थान पर कूर द कांसे शां है, और न प्रशासनिक न्यायालयों द्वारा, जिनकी क्रमबद्ध श्रेणी में सर्वोच्च स्थान पर कौंसिल द इत्ता है, अनुध्यात है । इस संबंध में भारत में समान स्थिति नहीं है । इसके अलावा यह भी बात है कि भारत में अभी तक संविधान के अधीन जो संवैधानिक मामले[6] उठे हैं और भविष्य में जिनके उठने की संभावना है उनका विस्तार, उनकी गहराई और विविधता की बातें फ़्रांस की संवैधानिक परिषद् के रूप में प्रतिनिधित्व करने वाले निकाय की अधिभारिता के बाहर की बातें हैं ।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 से लिए गए उदाहरण ।

2.7 ऐसे विवादों की, जो भारतीय संविधान के अधीन उठ सकते हैं और जिन पर समुचित रूप से विचार फ़्रांसीसी संवैधानिक परिषद् की तरह गठित निकाय द्वारा नहीं किया जा सकता, प्रकृति के उदाहरण के रूप में हम उस प्रश्न के प्रति निर्देश कर सकते हैं जो अभी हाल में ही एक कानूनी उपबन्ध की–जैसे कि हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 की–संवैधानिक वैधता के बारे में उठा है । इस धारा में न्यायालय की डिक्री के जरिए दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन का उपबन्ध है । दो उच्च न्यायालयों को–आन्ध्र प्रदेश और दिल्ली को अभी तक इस प्रश्न पर विचार करना पड़ा है, किन्तु वे भिन्न भिन्न निष्कर्ष पर पहुंचे हैं । हमें इस रिपोर्ट में इस विवाद के गुण दोषों से कोई सरोकार नहीं है । जो बात बतानी है वह यह है कि विधिक पृष्ठ भूमि वाले (अपने सामाजिक महत्व के अलावा) ऐसे संवैधानिक प्रश्न पर उसी संवैधानिक परिषद् द्वारा, जैसी कि फ़्रांस में कार्य करती है, विचार किया जाना समुचित नहीं हो सकता ।

---

1. आगे अध्याय 3 ।
2. आगे अध्याय 4 देखिए ।
3. विधि आयोग संकलन, पृष्ठ 1/107 ।
4. आगे पैरा 5.3 से 5.6 तक और पैरा 6.2 देखिए ।
5. आगे पैरा 27 देखिए ।

अध्याय 3

संवैधानिक न्यायनिर्णयन

I. साधारण संप्रेक्षण/संवैधानिक न्यायनिर्णयन के महत्वपूर्ण पहलू

संवैधानिक न्याय निर्णयन के पहलू।

3.1 वर्तमान जांच के प्रयोजन के लिए संवैधानिक न्यायनिर्णयन के ऐसे कुछ पहलुओं पर जोर देना वांछनीय प्रतीत होता है जिनसे ऐसे उपायों की आवश्यकता दर्शित हो जो विशिष्ट दृष्टिकोण विकसित करने और अध्ययन तथा चिन्तन के लिए पर्याप्त समय दिए जाने को सुगम बना सकें।

3.2 साधारण संप्रेक्षण के रूप में इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि देश के सर्वोच्च (हाइएस्ट) न्यायालय द्वारा संवैधानिक विवादों के न्यायनिर्णयन को ऐसा महत्व प्राप्त है जो अन्य प्रकार के विवादों को नहीं मिलता। वूडरो विल्सन ने ऐसे न्यायालय का जो वर्णन "निरन्तर सत्र में संविधान सभा" के रूप में किया है उसे ध्यान में रखना वांछनीय है क्योंकि संवैधानिक विधि के छात्र इससे परिचित हैं। यह कहा जाता है कि प्रत्येक पीढ़ी उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों के जरिए अपने संवैधानिक सिद्धान्तों को स्वयं लिखती है (किन्तु सदैव नहीं)[1]।

न्यायमूर्ति फ्रैंकफटर ने ऐसे न्यायालय को—"अत्यन्त विशेष प्रकार का न्यायालय"[2] की जो उपाधि प्रदान की है—वह लगभग ऐसे प्रत्येक न्यायालय के लिए होती है जिसे संवैधानिक प्रश्नों को विनिश्चित करने का कार्य सौंपा गया है।

संवैधानिक विधि शास्त्र के विकास में न्यायालय का योगदान।

3.3 न्यायालय को संवैधानिक न्यायनिर्णयन करने में नए और अभूतपूर्व विवादों का सामना करना पड़ता है इसलिए यह स्पष्ट है कि नियमों को नई स्थितियों के अनुकूल लागू करना एक मुश्किल कार्य है। होम्स ने यह इंगित करके इस ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि संवैधानिक अधिनियम के शब्दों ने "मानव को ऐसी प्राणशक्ति प्रदान की है जिसके विकास का पूर्णतया पूर्वानुमान संविधान के अत्यन्त प्रतिभाशाली जन्मदाताओं को भी नहीं हो सकता था"[3] अमरीका के सुप्रीम कोर्ट के बारे में यह कहा गया है कि "भले ही यह न्यायालय धनहीन और असिहीन हो किन्तु राष्ट्र जिस रूप में कार्य करता है उसे महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करने में इसका जो सामर्थ्य है वह महान सिद्ध हुआ है और वह सदैव बढ़ता हुआ प्रतीत होता है।"[4]

संवैधानिक न्यायनिर्णयन की विशिष्टताएं।

3.4 इन साधारण संप्रेक्षणों के प्रकाश में अब संवैधानिक न्यायनिर्णयन की ऐसी कुछ विशिष्टताओं की चर्चा आसानी से की जा सकती है जो गैर संवैधानिक न्यायनिर्णयन में या तो नहीं पाई जाती हैं या यदि पाई जाती भी हैं तो बहुत कम मात्रा में। इन विशेषताओं के कारण कुछ बातें न्यायनिर्णयन के बारे में सुसंगत हो जाती हैं। हम इनमें से चार के बारे में दृष्टान्त के रूप में उल्लेख कर सकते हैं, अर्थात् :—

(i) विशेषज्ञता,

(ii) सुसंगति,

(iii) संवैधानिक विधि शास्त्र का सिद्धान्त-संग्रह के रूप में विकास, जो स्वतः पूर्ण और सुसम्बद्ध हो,

(iv) पर्याप्त समय की उपलभ्यता।

इसमें कोई संदेह नहीं कि ऊपर जो बातें गिनाई गई हैं उनके आवश्यक रूप से स्वतंत्र या अलग-अलग प्रवर्ग बन जाएं। उनमें एक दूसरे से तारतम्य है और जिन कारणों से इन अनेक बातों का समर्थन होता है उनका भी एक दूसरे से तारतम्य है। किन्तु कुछ विस्तार से इनकी जांच करना समुचित हो सकता है।

---

1. ए० एस० मिलर सुप्रीम कोर्ट : मिथ एण्ड रियाल्टी, पृष्ठ 6।
2. फ्रांकफर्टर, "दि सुप्रीम कोर्ट इन दि मिरर आफ जस्टिसेज" (1957) 105, यू०पा०ला० रिव 781 ए०एस० मिलर द्वारा "सुप्रीम कोर्ट : मिथ एण्ड रियाल्टी" में पृष्ठ 24 पर उद्धृत।
3. मिसौरी बनाम हालैंड (1920) 252 यू एस 416, 435।
4. जान हार्ट एली, डिमाक्रेसी एण्ड डिसट्रस्ट : ए थियोरी आफ जुडिशियल रिव्यू (1980), पृष्ठ 45।

II. विशेषज्ञता

3.5 हम ऊपर उल्लिखित पहली बात को[1] लेते हैं, अर्थात् विशेषज्ञता को। इसके बारे में यह कह देना आवश्यक है कि सबसे महत्वपूर्ण पहलू विशेष दृष्टिकोण की आवश्यकता है। यहां हम उस कथन को उद्धृत करना चाहेंगे जिसे प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कैनीस ने कहा था जिनकी रुचि अर्थशास्त्र के क्षेत्र से परे अन्य क्षेत्रों में भी थी। कैनिस ने संवैधानिक विवादक का विनिश्चय करने वाले न्यायाधीश के योगदान का वर्णन करते हुए यह कहा था कि :— विशेष दृष्टिकोण

> "उसे किसी विशेष बात पर विचार करते समय अपने चिन्तन के एक जैसे क्रम में उस बात के अमूर्त और मूर्त रूप को अवश्य ही ध्यान में रखना चाहिए। उसे विगत के प्रकाश में वर्तमान का अध्ययन भविष्य के प्रयोजन के लिए अवश्य करना चाहिए। मनुष्य की प्रकृति का कोई भी रूप या उसके रिवाजों का कोई भाग अपने ध्यान से एकदम बाहर नहीं रखना चाहिए। उसे अवश्य ही उद्देश्यपूर्ण और समान मन:स्थिति की दशा में निष्पक्ष होना चाहिए जैसे कि एक कलाकार विलग और अभ्रष्ट रहता है फिर भी वह राजनीतिज्ञ की तरह कभी-कभी संसार से उतना ही जुड़ा रहता है जितना कि राजनीतिज्ञ[2]।"

3.6 ऊपर जो रूपरेखा दी गई है उसके अनुसार संवैधानिक न्यायनिर्णयन के दुर्भर कर्त्तव्यों का निर्वहन करने में विशेषज्ञता से सहायता मिल सकती है और हमारे सामने अमरीका के सुप्रीम कोर्ट का उदाहरण भी है। इस तथ्य से ही यह स्पष्ट है कि डेढ़ शताब्दी से अधिक अवधि तक अमरीका के सुप्रीम कोर्ट ने न्यायिक पुनर्विलोकन के अधिकार का प्रयोग किया जिससे उसे कुछ राजनीतिक आत्मविश्वास और राजनीतिक कार्यनिपुणता (सवाय फैरे) तथा राजनीति के महत्वपूर्ण सुप्रसिद्ध विवादों (काजेज सेलिब्रेस) में, विशेष कर जब ऐसे सुप्रसिद्ध विवाद (काजेज सेलिब्रेस) न्यायपालिका को विद्यमान विपरीत कार्यपालिका या विधायी प्राधिकरण के साथ प्रतिकूल संबंधों या शक्ति के संघर्ष में अन्तर्ग्रस्त करने के लिए भयभीत कर देते हैं, "संवैधानिक नियंत्रण करने और विधिक नरमी बात ने" के विशिष्ट न्यायिक अनुभव की निरन्तर मौखिक परम्परा को निभाने का अनुभव प्राप्त हो गया है।[3] अमरीका के सुप्रीम कोर्ट में विशेषज्ञता।

3.7 अमरीका में सुप्रीम कोर्ट के दो न्यायमूर्तियों ने मामलों के बढ़ते हुए भार की समस्या को हल करने के उपाय के रूप में विशेषित न्यायालयों (सौशलाइज्ड कोर्ट्स) के विकास के लिए जोरदार मांग की है[4]। अमरीका में कुछ न्यायाधीशों द्वारा अभिव्यक्त विचार।

मुख्य न्यायमूर्ति कारेन बर्गर ने इस बात को ध्यान में रखकर कि टैक्सास और ओक्लाहोमा अपने सर्वोच्च न्यायालयों में सिविल और दाण्डिक अपीलों को विभाजित कर देते हैं और अनेक राज्य मध्यवर्ती अपील न्यायालयों को पृथक् कर देते हैं, यह कहा था कि अत: यह स्पष्ट है कि पृथक् अपीलीय अधिकारिता की विचारधारा कोई प्रतिकूल विनाशकारी विचारधारा नहीं है ......

> "विशेषित न्यायालयों (स्पेशलाइज्ड कोर्टस) का अधिक उपयोग किए जाने के लिए किसी भी उपाय पर सावधानीपूर्वक विचार किया जाना चाहिए। किन्तु इस पर अवश्य विचार होना चाहिए"। उन्होंने इन शब्दों को न्यूयार्क में आर्थर टी. बैन्डरविल्ड के रात्रिभोज के समय नवम्बर में कहा था। उन्होंने यह कहा कि यूरोपिय देश शताब्दियों से ऐसे न्यायालयों का उपयोग "व्यापक और प्रभावकारी रूप से" करते रहे हैं। बर्गर ने इस बात को ध्यानपूर्वक देखा कि अमरीका में अधिकांश चिकित्सीय क्लीनिक और विधि-फर्में मरीजों और मुवक्किलों को ऐसे डाक्टरों या वकीलों के जिम्मे कर देती है जिन्हें विशेषज्ञीय अनुभव प्राप्त है। उन्होंने यह पूछा कि "यदि अधिवक्ताओं को अवश्य ही विशेषज्ञ होना चाहिए तो क्या हम न्यायिक पद्धतियों में कुछ विशेषज्ञता होने की आवश्यकता की पूर्णतया उपेक्षा कर सकते हैं[4]"।

---

1. पिछला पैरा 3.4 (i)।
2. जे०, एम० कैनीस "मेमोरियल्स आफ अलफ्रेड मार्शल" जो फ्रैंकफर्टर्स और लैन्डिस की पुस्तक "दि बिजिनेस आफ दि सुप्रीम कोर्ट" के पृष्ठ 318 पर पुन: उद्धृत है।
3. मैकहवीनी, "फेडरल सुप्रीम कोर्टस एण्ड कन्स्टीच्यूशनल रिव्यू" (1967) 45 कैने बार रिव० 578, 592, 593।
4. 69 ए बी ए जे 23 (जनवरी 1983) में रिपोर्ट (स्पैशलिटी कोर्टस)

जैसा कि पहले कहा गया है, अमरीका के सुप्रीम कोर्ट की न्यायमूर्ति सन्द्रा डे ओ' कानर (जो पहले राज्य अपील न्यायाधीश थीं) विशेषज्ञता को बढ़ावा देना चाहती हैं। उन्होंने शिकागो में अपील न्यायालय (कोर्ट आफ अपील) के मुख्य न्यायमूर्तियों को सम्बोधित करते हुए यह कहा था कि उन्होंने दाण्डिक विधि, प्रोबेट, कर घरेलू संबंधों और प्रशासनिक विधि के क्षेत्रों को विशेषज्ञता प्राप्त करने के लिए विशेष रूप से उपयुक्त क्षेत्र पाया है। उन्होंने यह कहा था कि जब किसी न्यायाधीश को विधि के किसी विषय या क्षेत्र की विशेषज्ञता प्राप्त रहती है तब वह सुनवाई करने की तैयारी कम समय में कर सकता है तथा विवाद्यकों को जल्दी से और सम्भवतः अच्छी तरह हल कर सकती है। उन्होंने इसके साथ यह भी कहा था कि "अधिकांश न्यायाधीश, जिनमें मैं भी शामिल हूं, अधिकारिता के विभिन्न विषयों पर विचार करना पसन्द करते हैं।"

III. राष्ट्रमंडल (कामनवैल्थ) में और अन्यत्र संवैधानिक खण्ड

राष्ट्रमण्डल में संवैधानिक खण्ड।

3.8 अभी तक राष्ट्रमण्डल देशों की अधिकारिताओं के अन्तर्गत शीर्ष न्यायालय (एपैक्स कोर्ट) में कोई संवैधानिक खण्ड सृजित नहीं किया गया है। अनेक अधिकारिताओं में कोटुम्बिक विधि और प्रशासनिक विधि जैसे विषयों पर विचार किए जाने के लिए विशेषित खण्ड (स्पेशलाइज्ड डिवीजन) स्थापित हो गए हैं किन्तु संवैधानिक खण्ड नहीं।

कनाडा में दिए गए सुझाव।

3.9 अन्यत्र भी संवैधानिक न्यायनिर्णयन के बारे में विशेषज्ञता पर जोर दिया गया है। कनाडा के संबंध में एक लेखक ने संवैधानिक न्यायालय की स्थापना के लिए दलील देते हुए कुछ समय पहले यह लिखा था[1] कि–

> "इन क्षेत्रों में विशेषज्ञता के पक्ष में दिए गए सभी तर्क उस समय और भी जोरदार हो जाते हैं जब संविधान जैसे बुनियादी दस्तावेज का निर्वचन करना हो। यह तर्क दिया जा सकता है कि इस प्रकार की विशेषज्ञता यूरोपीय देशों की बात है और यह कामन ला वाले देशों के लिए विदेशी है किन्तु मैं उस बात की ओर ध्यान दिला रहा हूं कि हमें अपने संविधान का सुधार यूरोपीय पद्धति अपनाकर करना चाहिए। वास्तव में अमरीका के उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) ने लोक विधि के मामलों पर अनन्य रूप से अपना ध्यान केन्द्रित करके विशेषज्ञता स्वयं प्राप्त कर ली है————————————।"

लोक-विधि का देर से आविर्भाव।

3.10 संवैधानिक न्यायालयों या खंडों के बारे में क्यों गम्भीरता से विचार नहीं किया गया इसका कारण यह तथ्य हो सकता था कि लोक विधि की ही जिसकी दो अत्यन्त महत्वपूर्ण शाखाएं संवैधानिक विधि और प्रशासनिक विधि हैं, काफी बाद में मान्यता प्राप्त हुई। इसमें कोई संदेह नहीं कि राज्य एक बहुत ही पुरानी संस्था है। प्राचीन काल में भी राज्यों और नागरिकों के बीच विवाद, प्रभु (साबरे) को शक्तियों और सरकारी तंत्र (मशीनरी) के कार्यकरण से संबंधित विवाद, सरकार अभिकरणों (एजेंसियों) के पारस्परिक कार्य से संबंधित विवाद—ऐसे सभी मामले जो संवैधानिक विधि और प्रशासनिक विधि के सार-भाग हैं—अवश्य ही उठे होंगे। प्लेटो ने राज्य के बारे में जो अद्वितीय मौलिक चिन्तन किया था, अरस्तू ने "संविधान" के बारे में जो वृहत और व्यापक अध्ययन किया था और कौटिल्य में राज कार्यपद्धति तथा शासन-विज्ञान का जो विशाल बहुदर्शी रूप पाया जाता है, उन सब के प्रतिरूप महान विधिक संघर्षों में भी सम्भवतः प्रकट हुए हों। किन्तु लोकहित विधि को, जिसका अपना अलग अस्तित्व है, विगत काल की विरासत की बजाए पिछले दस एक दशकों की उपज माना जाता है। इस अपेक्षाकृत देर से लोकविधि के अविर्भाव के कारण विधि के इस भाग में विशेषज्ञता प्राप्त करने वाले अधिकरणों का भी देर से अविर्भाव हुआ। नियम तो विद्यमान थे और शताब्दियों से विद्यमान रहे थे, किन्तु न तो उनके अपने कोई लेबल थे और न उनके कोई अपने अलग नाम थे। नागरिकों की स्वतंत्रताओं का राज्य के साथ संबंध परिनिश्चित करने वाले नियम नागरिकों के साधारण अधिकारों और स्वतंत्रताओं के साथ घुल मिल गए थे जिसकी व्याख्या डायसी ने बहुत स्पष्ट रूप से की है। इन नियमों का मेल साधारण विधि के इतिवृत्तात्मक नियमों के साथ हुआ और नियमों के समूह में इनकी पहचान नहीं की जा सकी।

---

1. वैम्यूइस—द्यू आन मोरिन, 43 कना०, बार० रिव० 545, 549।

संवैधानिक विधि के नियमों की ऐसी प्रकृति और अन्तर्वस्तु होने के कारण इन नियमों की विशेषज्ञता प्राप्त करने वाले अधिकरण सृजित करने की मांग की इच्छा ही उत्पन्न नहीं हुई ।

अतः शीर्ष (एपैक्स) न्यायालयों में संवैधानिक खंड सृजित किए जाने पर राष्ट्रमण्डल के देशों की अधिकारिताओं में गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया गया है । अभी हाल तक प्रमुख राष्ट्रमण्डल के देशों की अधिकारिताओं में मूल अधिकारों के लिए प्रत्याभूतियां (गारंटियां) लगभग अविद्यमान थीं । अतः ऐसी प्रत्याभतियों के अतिक्रमणों से सम्बन्ध रखने वाले विशेषखंड के बारे में सोचने की व्यवहारिक आवश्यकता ही नहीं हुई ।

3.11 किन्तु इस बात के लिए कोई तर्कसंगत कारण नहीं है कि ऐसी स्थिति बनी रहे । राष्ट्रम डल, विशेषकर "नए राष्ट्रमण्डल" के संविधानों में अब मूल अधिकार संस्थापित हो गए हैं। इससे पहले भी संवैधानिक विधि के प्रश्न, जिनमें से अधिकांश प्रश्न संघ और इकाइयों के बीच शक्ति-विभाजन के कारण उठते थे, राष्ट्रमण्डल के अनेक देशों के मुकदमों के सुविदित विषय थे । भारत में भी भारत शासन अधिनियम, 1935 (गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट 1958) के अधीन सृजित संघ न्यायालय (फेडरल कोर्ट) मुख्यता संवैधानिक विवादकों से सरोकार रखता था । इसमें कोई संदेह नहीं कि आगे चलकर राजनीतिक आवश्यकताओं के कारण उसकी अधिकारिता का विस्तार किया गय किन्तु संघीय क्षेत्र में संवैधानिक अधिकरण के रूप में उसका योगदान कभी सीमित नही हुआ । जिन उपबन्धों में अनेक मूल अधिकार विस्तार से संस्थापित हैं उनसे उत्पन्न होने वाले कठिन और जटिल प्रश्नों को देखते हुए संवैधानिक न्यायनिर्णयन के सम्बन्ध में विशेषज्ञता की आवश्यकता और भी अधिक है । *वर्तमान स्थिति के लिए कोई नर्कसंगत कारण नहीं।*

3.12 ऐतिहासिक कारणों से भारत के उच्चतम न्यायालय में अनेक प्रकार की अधिकारिताएं निहित की गई थीं । प्रारम्भ के कुछ वर्षों में संवैधानिक न्यायनिर्णयन में उच्चतम न्यायालय के योगदान के महत्व की ओर ध्यान नहीं दिया गया । इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसी अनेक युगान्तरकारी संवैधानिक घटनाएं हुई और कुछ ऐसे सुप्रसिद्ध विवाद (काजेज सेलिब्रेस) तथा कुछ निर्णय हुए जिनसे संवैधानिक विधि के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की बुनियाद रखी गई है ; किन्तु ये आकाश में तारों की तरह चमककर लुप्त हो गए। उनसे संवैधानिक अधिकरण के रूप में उच्चतम न्यायालय का योगदान निश्चित नहीं हो सका । संवैधानिक विवाद अन्य विवादों के साथ न्यायिक कामकाज के प्रवाह में अपने के कारण जनता की नजरों को या व्यवसायिक क्षेत्र को आकृष्ट नहीं कर सके । वे न्यायालय की बहुयामी अधिकारिता को केवल एक रूप माने गए । *भारत में स्थिति ।*

अब स्थिति भिन्न है । धीरे धीरे संवैधानिक विधि शास्त्र का सृजन हो रहा है । अब भारत में संवधानिक न्यायनिर्णयन की जड़ें मजबूत हो गई हैं (कुछ व्यक्तियों के विचार के अनुसार यह साधारण मुकदमों पर हावी हो गया है) अतः स्थिति की जांच करने और इसकी विशेष आवश्यकताओं पर विचार करने के लिए कुछ समय देना समुचित है ।

3.13 लोक विधि के एक प्रख्यात लेखक[1] को दक्षिणपूर्व एशिया और अफ्रीका के नए स्वतंत्र और स्वशासी देशों में असंवैधानिक अधिनियमों के न्यायिक पुनर्विलोकन के लिएअ पनाए गए तंत्र के बारे में यह कहना है :— *मैलछीनी के विचार।*

> "अभी तक न्यायिक पुनर्विलोकन के लिए अपनायी गई रूढ़िगत मुख्य संवैधानिक पद्धतियां ऐसे अंग्रेजी भाषी देशों से ली गई हैं जिनकी लोक-विधि की पद्धतियां—चाहे वे राष्ट्रपति और कार्यपालिका तथा शक्तियों का पृथक्करण के अमेरिकी माडल पर हों या इसकी बजाए संसद् और कार्यपालिका (इंग्लैंड और राष्ट्रमण्डल) के सामान्य माडल के पर हों—सब मुख्यतया कामन ला के विधिक आधार पर हैं । कामन ला से लिए गए पूर्व दृष्टान्तों, निर्णयज विधि और न्यायिक तर्क की विचारधाराएं तो विद्यमान हैं ही । हममें कम से कम राष्ट्रमण्डल के देशों में ऐसे विशेषज्ञ उच्चतम न्यायालयों द्वारा या उच्चतम न्यायालयों में ऐसे विशेषित न्यायपीठों द्वारा भी, जिनमें विषय वस्तु के कारण उनकी अधिकारिता सीमित है, न्यायिक विशेषज्ञता से लाभ उठाने में उपेक्षा करने की प्रवृत्ति अपनायी गई है और इस बात को भूल गए हैं कि 1925 के जुडिशियरी ऐक्ट द्वारा किए गए सुधारों से अमरीका का सुप्रीम कोर्ट सभी व्यवहारिक प्रयोजनों के लिए लोक विधि का विशेषज्ञ या संवैधानिक अधिकरण बन गया है ।"

1. मकह्वीनी, जुडिशियल रिव्यू (1969), पृष्ठ 235।

अमरीका के सम्बन्ध में न्यायमूर्ति श्री फ्रैंकफर्टर ने इस तथ्य को उस समय स्वीकार किय था जब उन्होंने यह कहा था[1] कि "इसीलिए उच्चतम न्यायालय में मुकदमे लोक विधि के विवाद्यकों के ही सम्बन्ध में हैं ।"

मुख्य न्यायमूर्ति वारेन बर्गर ने यह कहा था[2] कि "अमरीका में हमारी न्यायालय पद्धति महान है किन्तु वह परिपूर्ण नहीं है । आयोग को औद्योगिक रूप से उन्नत प्रत्येक बड़े देश की न्यायालय पद्धति का अवलोकन यह पता लगाने के लिए करना चाहिए कि क्या हम उनसे कुछ सीख सकते हैं ।"

मुख्य न्यायमूर्ति वारेन बर्गर ने इसके आगे यह भी कहा था कि :—

> "फ्रांस एक ऐसा देश है जहां संवैधानिक प्रश्नों को हल करने के लिए नौ सदस्यों की एक संवैधानिक परिषद् है । एक दूसरा फ्रांसीसी न्यायालय है जो सभी प्रशासनिक मामलों की सुनवाई का अन्तिम न्यायालय है तथा एक अन्य न्यायालय सभी मामलों की सुनवाई करने के लिए है वास्तव में वहां तीन उच्चतम न्यायालय हैं और उत्तर में स्वीडन से लेकर इटली नीचे तक पूरे युरोप में आम तौर पर यही पैटर्न है ।"

मुख्य न्यायमूर्ति वारेन बर्गर का सुझाव।

3.14 इसी प्रक्रम पर यह उल्लेख कर देना समुचित होगा कि मुख्य न्यायमूर्ति वारेन बर्गर ने उच्चतम न्यायालय में मामलों से सम्बन्धित कार्यभार की समस्या की जांच करने के लिए आयोग के सृजन का सुझाव देते समय आगे यह भी सुझाव दिया था कि वह आयोग (यदि उस देश में जब कभी गठित किया जाए तो) इस तथ्य को भी ध्यान में रखेगा कि वास्तव में अधिकांश यूरोपीय देशों में अन्तिम सुनवाई के लिए ऐसे एक न्यायालय की बजाए दो या तीन न्यायालय हों ।[3-4]

जर्मनी का संवैधानिक न्यायालय।

3.15 विशेषज्ञता के पहलू के दृष्टान्त अनेक यूरोपीय देशों में सृजित संवैधानिक न्यायालयों द्वारा प्रकट होते हैं[5] । विशेषित न्यायालय (स्पैशलाइज्ड कोर्ट) का ज्वलन्त उदाहरण पश्चिम जर्मनी का संवैधानिक न्यायालय है, जो मुख्यतया संवैधानिक विधि और कुछ प्रकार के ऐसे विवादों से सरोकार रखता है जिनमें प्रशासनिक विधि के विवाधक होते हैं[6]। विशेषित पृथक् अधिकरण (एजैन्सियां) अन्य विवादों पर विचार करती हैं और वहां पर प्रशासनिक विधि, श्रम विधि, सामाजिक मामलों तथा कराधान विधि के लिए पृथक् उच्चतम न्यायालय हैं ।[6]

iv संवैधानिक न्यायनिर्णयन में विवाधक

प्रश्नों का विस्तार—कोहेन, जैक्सन और फ्रैंकफर्टर के विचार।

3.16 अब यहां संक्षेप में संवैधानिक न्यानिर्णयन में विवाद्यकों की प्रकृति के बारे में बता दिया जाए । मौरिस ने इन विवाधकों का वर्णन इस प्रकार किया है :—

> "हम यह दिखावा नहीं कर सकते कि उच्चतम न्यायालय केवल न्यायालय है । वास्तव में उसके समक्ष जो विवाद्यक उठते हैं वे सभी प्रकार के तथ्यों के अवधारण और उनके परिणाम तथा उस महत्व पर साधारणतया निर्भर करते हैं जो हम उन परिणामों को प्रदान करते हैं ये अर्थशास्त्र, राजनीति तथा सामाजिक नीतियों के प्रश्न होते हैं जिनका समाधान विधिक प्रशिक्षण द्वारा नहीं हो सकता, जब तक कि विधि में सभी सामाजिक ज्ञान सम्मिलित न हों[7] ।"

राबर्ट जैक्सन ने अमरीका के सुप्रीम कोर्ट के बारे में चर्चा करते हुए यह कहा था कि "उसे (अमरीका के सुप्रीम कोर्ट को केवल एक दूसरा न्यायालय नहीं माना जा सकता) । संविधान में इस न्यायालय का स्थान ऐसी नीतियों द्वारा अवधारित किया गया था जो विधि से अधिक व्यापक दर्शनशास्त्र से ली गई थी[8] ।

1.फ्रैंकफर्टर (1928) में, 42 हार वं० ला० रिव० 18 ।

2.क्वालिटी आफ जस्टिस "(एक मुलाकात का अभिलेख)" स्पैन (अक्तुबर, 1983) पृष्ठ 55 से 58 तक :

3.वही,यथोक्त ।

4.इस प्रश्न के बारे में कि क्या संवैधानिक संशोधन आवश्यक होगा, आगे पैरा 4.3 देखिए ।

5.आगे अध्याय 5 ।

6.जर्मन संघ गणराज्य के संविधान का अनुच्छेद 93, आगे पैरा 5.7 से 5.14 तक देखिए ।

7.मौरिस कोहैन, रीजन एण्ड ला० (1950) पृष्ठ 73-74 ।

8.जैक्सन, दि सुप्रीम कोर्ट इन अमेरिकन सिस्टम आफ गवर्नमेंट, (1965) पृष्ठ 2 ।

जैक्सन ने भी कारडोजो के सपेक्षण को निम्नलिखित रूप में उद्धृत किया था:—

"यह (न्यूयार्क कोर्ट आफ अपील्स) कामन ला का एक महान न्यायालय है; इसकी समस्याएं वकीलों की समस्याएं हैं। किन्तु सुप्रीम कोर्ट मुख्यतया कानूनी अर्थान्वयन करने म– जिसे कोई व्यक्ति रुचिकर नहीं बना सकता–और राजनीति में व्यस्त रहता है। किन्तु जैक्सन ने आगे यह भी कहा था कि "यह निस्सन्देह है कि उसने (कार डोजो ने) राजनीति शब्द का प्रयोग भागीदारी के अर्थ में नहीं बल्कि नीति बनाने के अर्थ में किया था[1]।"

न्यायमूर्ति फ्रैंकफर्टर ने भी यह कहा था कि "हमें यह तथ्य स्वीकार कर लेना चाहिए कि सुप्रीम कोर्ट के पांच न्यायमूर्ति प्रकट किए गए सत्य के अवैयक्तिक वाहक होने की बजाए नीति गढ़ने वाले हैं।"

"लोगों को यह विश्वास करने की शिक्षा दी गई है कि जब सुप्रीम कोर्ट बोलता है तब वह नहीं बल्कि संविधान बोलता है जब कि यह निस्सन्देह है कि अनेक महत्वपूर्ण मामलों में वे ही बोलते हैं, न कि संविधान। और मैं वास्तव में यह विश्वास करता हूं कि देश को यह बात समझने की अत्यन्त आवश्यकता है[2]।"

V चुनाव का तत्व

3.17 अतः संवैधानिक न्यायाधीश पर बहुत बड़ा भार है। इस बहुत बड़े भार का जो एक कारण है वह यह महत्वपूर्ण परिस्थिति है कि संवैधानिक मामलों में प्रायः चुनाव करना पड़ता है। यह भी मुख्यतया दो कारणों से है। पहली बात यह है कि संविधान के कुछ उपबन्ध (केवल आवश्यकता के कारण) व्यापक और संदिग्ध शब्दों में व्यक्त किए गए हैं। यह विनिश्चित करने में कि किसी खास मामले में उनके क्या अर्थ हैं; प्रतियोगी मूल्यों में चुनाव करना पड़ता है। दूसरी बात यह है कि संविधान में आने वाले कुछ विवेचानात्मक वाक्यांश अच्छी तरह समझ में नहीं आ सकते या उनका अर्थ तब तक निश्चित नहीं किया जा सकता जब तक कि उनके लेखकों की भाषा और उनके ज्ञातव्य आशय से परे किसी अन्य स्रोत से पर्याप्त सहायता न ली जाए। संवैधानिक न्यायनिर्णयन में चुनाव पक्षकारों के बीच नहीं बल्कि लक्ष्यों के बीच करना होता है। चुनाव का पहलू

यह सप्रेक्षण किया गया है कि "संवैधानिक विधि में कोई वस्तुपरकता इस कारण नहीं है कि उसमें कोई आत्यांतिकता नहीं है। प्रत्येक संवैधानिक प्रश्न में प्रतियोगी मूल्यों को तोलना पड़ता है। इनमें कुछ मूल्यों को वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति मान्यता देता है और अन्य मुल्यों को थोड़े व्यक्ति मान्यता देते हैं। "समाज में जिन मूल्यों को अधिक व्यापक रूप से मान्यता मिलती है उतने ही अधिक मूल्यों को उच्चतम न्यायालय मान्यता देगा; जो मूल्य जितने ही अधिक विवादास्पद होगी उच्चतम न्यायालय उन पर भिन्न-भिन्न राय कायम करेंगी[3]।"

3.18 राबर्ट जी० मैक्लौसकी ने अमरीका के सुप्रीम कोर्ट के बारे में यह लिखा है कि :— मैक्लौस्की के विचार

"डेड़ सौ से अधिक वर्षों से विद्वान और न्यायाधीश इस दन्तकथा का निराकरण करते आ रहे हैं कि यह केवल विवादरहित संवैधानिक विभिन्ताओं पर अवैयक्तिक राय प्रकट करने वाला न्यायालय है और इस बात पर जोर देते रहे हैं कि न्यायिक प्रक्रिया में नीति-निर्णयों पर आधारित चुनाव करने का तत्व विद्यमान है[4]।"

3.19 वतमान संदर्भ में इस बात पर भी जोर दिया जाना चाहिए कि जो मामले उच्चतम न्यायालय में आते हैं उनकी क्या प्रकृति होती है। उच्चतम न्यायालय में जो मामले आते हैं वे "विधि के मामले ——— "निदान" या "कष्ट" के मामले नहीं होते। आम तौर पर यह कहा जा सकता है कि कोई मामला सर्वोच्य न्यायालय में यथार्थतः इस कारण से आता है कि आसानी से उपलब्ध कोई विधि सम्मत शासन विवाद्यक का समाधानप्रद रूप से निपटारा नहीं करता। प्रायः ऐसी कोई पूर्व विद्यमान विधि नहीं रहती जिस पर विचार किया जाना बाकी हो। तब न्यायालय को प्रतियोगी हितों का सन्तुलन करके अपनी विधि अवश्य बनानी चाहिए। उच्चतम न्यायालय में आने वाले ममालों की प्रकृति।

1. जैक्सन, "दि स्ट्रगल फार जुडिशियल सुप्रेमेसी" (1955) पृष्ठ 54।
2. एम फ्रीडमैन (सम्पा०) "रूजवेल्ट एण्ड फ्रैंकफर्टर: देयर कराररूपान्डस" 1928—1945 (1967), पृष्ठ 383।
3. लियोनार्ड डब्ल्यू लेवी (सम्पा०) जुडिशियल रिव्यू एण्ड दि सुप्रीम कोर्ट स्लेकटेड केसेज, पृष्ठ 197।
4. राबर्ट जी मैक्लौस्की, दि माडर्न सुप्रीम कोर्ट, पृष्ठ 298।

न्यायाधीश का कार्य और इसके लिए अपेक्षित मानसिक तैयारी।

3.20 यह बात भी स्वीकार कर ली गई है कि संवैधानिक न्यायनिर्णयन करने में न्यायाधीश को कठिन कार्य करना पड़ता है। उसे वर्तमान विवाद्यक की जांच पूर्व अनुभव को आत्मसात अवश्य करना चाहिए और विगत तथा वर्तमान दोनों से आगे बढ़ जाना चाहिए जिससे कि वह स्वयं भविष्य की कल्पना कर सके।

यह स्पष्ट है कि ऊपर वर्णित कार्यों की विशालता और विभिन्नताओं के कारण समुचित मानसिक तैयारी आ॰ श क है। लौ नैड हैंड ने न्या ाधीश से अपेक्षित मानि क तैयारी का जो निम्‍लिखित वर्णन किया है उससे और अच्छा वर्णन नहीं किया जा सकता:—

"मैं यह विश्वास करने का साहस करता हूं कि सवैधानिक विधि के प्रश्न पर विचार करने वाले न्यायाधीश के लिए यह महत्वपूर्ण बात है कि उसे ऐक्शन और पैटलैंड, थुसीडिडैंस, गिबन और कालईल हौयर, दांते, शैक्सपीयर और मिल्टन, मैकैवली, मांटगैनी और रैक्लेक्स, प्लेटो, बैकेन, ्यूम और कैंट की रचनाओं और इस विषय पर विशेष रूप से लिखित पुस्तकों की थोड़ी जानकारी होनी चाहिए क्योंकि ऐसे मामलों में सब कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि वह अपने समक्ष प्रश्नों पर किस भावना से विचार करता है। उसे जिन शब्दों का अर्थान्वियन अवश्य करना है वे खाली पात्र होते हैं जिनमें वह जो कुछ भी चाहे भर सकता है। लोग न तो छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देते हैं और न ऐसे न्यायाधीशों से, जिनका दृष्टिकोण क्षेत्र या वर्ग की भावना के कारण सीमित है, विधि या नियम आदि लेकर प्रभावित करते हैं। उन्हें (न्यायाधीशों को) इस बात की जानकारी अवश्य होनी चाहिए कि उनके सामने जो समस्याएं हैं वे मौखिक रूप से प्रकट की गई समस्याओं से बढ़ कर हैं और उनके अन्तिम समाधान से भी बढ़कर उनका ऐसा व्यापक समाधान होना चाहिए जो सर्वव्यापी रूप से लागू हो सके। उन्हें प्रत्येक समाज में बदलती हुई ऐसे विशेष तनावों या संघर्षों की, भी जानकारी होनी चाहिए जो समाज को जीवित रखते हैं, परिस्थितियों के अनुकूल बनने के लिए नई योजनाओं की मांग करते हैं और जो यदि दृढ़ता से रोक दिए गए तो समाज को ही नष्ट कर देंगे[1]।"

प्रिवी कौंसिल के बारे में लार्ड हाल्डेन के संप्रेक्षण।

3.21 इसी सिलसिले में यह उल्लेख कर देना समुचित होगा कि प्रिवी कौंसिल में लार्ड हालडैन ने भी संवैधानिक मामलों में व्यापक दृष्टिकोण होने की आवश्यकता पर जोर दिया था[2]। उन्होंने यह बताया था कि जुडिशियल कमेटी के न्यायाधीशों का चयन करने में कुछ तथ्यों को ध्यान में रखा गया था जिनमें उन्होंने ऐसा प्रशिक्षण दिए जाने की आवश्यकता को भी सम्मिलित किया था जिसे "न्यायाधीशों को राजनीतिज्ञ जैसा दृष्टिकोण प्रदान करने वाला प्रशिक्षण कहते हैं।"

VI संगति

न्यायनिर्णयन में संगति।

3.22 संवैधानिक न्यायनिर्णयन के जिस दूसरे पहलू पर जोर देने की आवश्यकता है वह संगति है। प्रत्येक प्रकार के न्यायनिर्णयन में यह वांछनीय है किन्तु संवैधानिक न्यायनिर्णयन में तो यह विशिष्ट रूप से वांछनीय है। न्यायनिर्णयन के प्रभाव के बारे में जो सब बातें पूर्ववर्ती पैराओं में कही गई हैं उन्हें दुहराने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे मामलों में संगति का विशिष्ट महत्व है क्योंकि एक बार सुनाया गया निर्णय राज्य और उसके अभिकरणों के कार्यकरण को भविष्य में भी नियमित करेगा और नागरिकों के अधिकारों तथा कर्तव्यों को प्रभावित करेगा।

संगति का अर्थ।

3.23 निस्सन्देह यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि जब कोई इस प्रसंग में "संगति" के बारे में कहता है तो उसका यह अभिप्राय नहीं होता कि पूर्व निर्णयों का अन्धाधुन्ध और दुराग्रहपूर्ण अनुसरण किया जाए[3]। इस प्रयोजन के लिए यह विचार-विमर्श करना आवश्यक नहीं है कि किसी न्यायालय को अपने पूर्वनिर्णय को उलटने की शक्ति रखने की मान्यता देना वांछनीय है या नहीं। यहां "संगति" का अर्थ यह है कि विगत काल में किए गए विनिश्चय पर और उस पूर्व विनिश्चय में अन्तर्निहित दृष्टिकोण पर न्यायालय द्वारा ऐसे किसी मामले का, जिसमें उस दृष्टिकोण की कुछ संगति हो, विनिश्चय करते समय सोच-विचार किया जाना चाहिए। अलग अलग प्रत्येक मामले में यह विनिश्चय करने की बात होगी कि

1. लर्नेड हैंड, दि स्पिरिट आफ लिबर्टी, पृष्ठ 63।
2. लार्ड हाल्डेन, कैम्ब्रिज ला॰ जर्नल, 148 में।
3. आगे पैरा 3.29 भी देखिए।

उसका अनुसरण किया जाए या नहीं किन्तु न्यायालय को उस पूर्वविनिश्चय के बारे में तो सचेत रहना ही चाहिए। न्यायालय के इस कार्य का पर्याप्त से अधिक रूप में निर्वहन हो सकता है जब संवैधानिक प्रश्नों पर अनन्य रूप से विचार करने वाले विशेषित खंड कार्य कर रहा हो।

3.24 ऐसे विवादों में न्यायालय का योगदान एक ऐसे व्यापक मानक को स्पष्ट रूप से व्यस्त करने में है जो उसके समक्ष विवाद के लिए ठीक हो और उस विवाद से परे विवादों को लागू हो। इस प्रक्रिया में न्यायालय भारत के लोगों के लिए राष्ट्रीय विवेक के रूप में कार्य करता है न कि केवल नगण्य विवादों में मध्यस्थ के रूप में। इससे एक ऐसे आदर्श की स्थापना हो जाती है जिसके लिए लोग और सरकार कामना कर सकती है। न्यायालय में जिस हद तक विवाद आते हैं उस हद तक न्यायालय भारतीय समाज के लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में सहायता दे सकता है। इस दृष्टि से देखने पर संवैधानिक विधि में किसी विनिश्चय को बहुत महत्व प्राप्त हो जाता है। यही कारण है कि न्यायाधीशों के पास उनके समक्ष रखी गई सामग्री पर्याप्त होनी चाहिए, उन्हें पर्याप्त समय मिलना चाहिए और निसन्देह उन्हें पर्याप्त साधन उनकी इच्छा पर सुलभ होने चाहिए। इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्हें संवैधानिक न्यायनिर्णयन करने में अपेक्षित व्यापक दृ टकोण विकसित करने के लिए समर्थ बनाया जाए। न्यायालय का योगदान।

3.25 संवैधानिक मामलों में उच्चतम न्यायालय को अपनी इच्छानुसार कार्य करने की व्यापक स्वतंत्रता प्राप्त है। किन्तु इस स्वतंत्रता का उपयोग करने में उसे अत्यधिक भ्रम उत्पन्न नहीं करना चाहिए[1]। न्यायिक पदानुक्रम में उच्चतम न्यायालय अन्तिम प्रवक्ता है और उससे छोटे प्रवक्ता को उसका अवश्य ध्यान रखना चाहिए। यदि उच्चतम न्यायालय में ऐसी नीतियों का अनुसरण करता है जिनको उससे छोटे प्रवक्ता उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रयोग किए जाने वाले तकनीकों का ही प्रयोग करके तोड़-मरोड़ कर उलटा निष्कर्ष निकाल सकते हैं तो उच्चतम न्यायालय अपना प्रभाव स्वयं निष्फल कर देता है। यही उच्चतम न्यायालय की शक्ति पर बहुत प्रभावकारी निर्बन्धन हो सकता है। न्यायालय के प्रत्येक शब्द को इस दृष्टि से लिखा जाना चाहिए कि उसका अर्थ भविष्य में समान स्थितियों, मिलती-जुलती स्थितियों और असंगत स्थितियों में भी एक जैसा ही रहे। अन्तिम "प्रवक्ता"।

3.26 सैमइरविन जूनियर ने संविधान की "अस्पष्ट व्यापकता" की व्याख्या करने में न्यायालय के योगदान पर इन शब्दों में जोर दिया था:— अस्पष्ट व्यापकता की व्याख्या।

> "सैकड़ों, हजारों मामलों में इस वाक्यांश के अन्तर्गत विषय-वस्तु को बढ़ाते रहने की अपेक्षा की जाती है किन्तु संविधान ही उनके बारे में निश्चय करता है। यदि संविधान विनिर्दिष्ट रूप में हो तो वह संविधान नहीं हो सकता और उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह साधारण शक्तियों और निर्बन्धनों से युक्त सरकार के सिद्धान्त तथा उसकी संरचना को कायम रख सकता है[2]।"

3.27 न्यायमूर्ति कारडोजो के अलावा और किसी ने भी न्यायिक योगदान के निर्बन्धनों को अधिक सुन्दर ढंग से व्यक्त नहीं किया है। उन्होंने यह स्वीकार करने के पश्चात् कि "अनेक उथल-पुथल, जो शेष लोगों को प्रभावित करते हैं, अपना प्रवाह बदलते नहीं और न्यायाधीशों को भी अछूता नहीं छोड़ते" बुद्धिमता पूर्ण रूप से यह स्पष्ट किया है कि न्यायाधीश को :— पद्धति द्वारा अनुशासित विवेक।

> "अपनी इच्छानुसार नई पद्धति स्थापित नहीं करनी है। वह ऐसा शूरवीर नहीं है जो सुन्दरता और अच्छाई के अपने आदर्शों को अपनी इच्छानुसार लागू करे। उसे प्रतिष्ठित सिद्धान्तों से प्रेरणा प्राप्त करनी है। उसे आकर्षक भावना अस्पष्ट और अनियमित उदारता के वशीभूत नहीं होना है। उसे ऐसे विवेक का प्रयोग करना है जो परम्परा की जानकारी रखता हो, साम्यानुमान की रीति के अनुसार और पद्धति से अनुशासित हो तथा "सामाजिक जीवन में व्यवस्था की मूल आवश्यकता" के प्रति आस्था रखता हो[3]।"

---

1. राबर्ट ए०, "डब्लयू डिसीजन मेकिंग इन ए डिमोक्रेसी' लेवी (सम्पा०), जुडिशियल रिव्यू एण्ड दि सुप्रीम कोर्ट" 179, में।
2. ऐम जे० इरविन जूनियर, रोल आफ दि सुप्रीम कोर्ट पालिसी मेकर आर एडजुडिकेटर पृष्ठ 24।
3. मार्टिन शापिरे, ला एण्ड प्रैक्टिसेज इन सुप्रीम कोर्ट, पृष्ठ 18।

संगति के बारे में शापिरे के विचार।

3.28 शापिरे ने न्यायाधीश के योगदान का वर्णन करते हुए निम्नलिखित शब्दों में संगति के एक दूसरे पहलू की चर्चा की है:—

"दूसरे शब्दों में उसका खास सरोकार इस बात से नहीं होना चाहिए कि किए गए या न किए गए विनिश्चय से किसी नीग्रो को आगामी बीस वर्षों में समानता की स्थिति तक पहुंचना सुगम होगा कि नहीं। उसका इस बात से सरोकार होना चाहिए कि वह जिस संभावता के स्तर का प्रतिपादन कर रहा है वह आगामी बीस वर्षों में उसके तर्क और संगति के मार्ग का समर्थन करता है या नहीं अथवा उसे तर्क हीनता की ओर जाने के लिए अग्रसर करता है। वह जिस स्तर का प्रतिपादन कर रहा है क्या वह स्तर पर्याप्त रूप में इतना साधारण और तर्कसंगत है कि भविष्य में उसके समक्ष आने वाले मामलों में भी वह लागू हो सकता है।"

परिवर्तन और स्थिरता।

3.29 ऊपर संगति[1] के पहलू पर जो जोर दिया गया है उसका यह अर्थ नहीं है कि संवैधानिक न्याय-निर्णयन में कोई नया परिवर्तन होना ही नहीं चाहिए। किन्तु इस नीतिवचन को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि "न्यायालय को अच्छाई या न्याय या बुद्धिमानी की दृष्टि से विनिश्चय नहीं करना है बल्कि संविधान के शब्दों में पाये जाने वाले सिद्धान्त की निरन्तरता, न्यायिक पूर्व दृष्टान्तों, परम्परा गत समझबूझ और इसी प्रकार के विधि स्रोतों के अनुसार विनिश्चय करना है[2]।

इससे यह प्रतीत होगा कि न्यायालय को स्थिरता और परिवर्तन के बीच सन्तुलन बनाए रखना है इस पहलु पर अक्सर जोर दिया जाता है। यह पहलू जिस कारण से महत्वपूर्ण हो जाता है उसके लिए हम विलियम हर्स्ट के शब्दों को उद्धृत कर दें[3]।

"जब आप संवैधानिक विधि की बात करते हैं तब आप समुदाय में शक्ति-सन्तुलन और इस प्रश्न के बारे में बात करते हैं कि आप को यह कैसा लगता है कि अर्थ पूर्णतया उस व्यक्ति के अनुकूल निकलेगा जो उस अर्थ को निकलता है[3]।

न्यायिक प्रक्रिया में दो विरोधी बातों—स्थिरता और निश्चि ता—का समन्वय करना पड़ता है। जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी ऐसा हो सकता है। इसके बारे में व्हाइट हैड[4] ने यह संप्रेक्षण किया है कि— "चाहे हम किसी भी क्षेत्र का अन्वेषण करें किन्हीं भी विशिष्ट विचारों की साकार अभिव्यक्तियों में अन्तर्निहित दो सिद्धान्तों की पुनरावृत्ति स्वाभाविक रूप से होती रहती है। ये दो सिद्धान्त हैं—परिवर्तन की भावना और संरक्षण की भावना। इन दोनों के बिना कुछ भी सत्य नहीं हो सकता। संरक्षण के बिना केवल परिवर्तन शून्य से शून्य तक की यात्रा है। उसके अन्तिम एकीकरण का सत्य क्षणिक और नगण्य होता है। परिवर्तन के बिना संरक्षण में कुछ भी संरक्षित नहीं किया जा सकता क्योंकि अन्त में तो परिस्थितियों की बाढ़ आती रहती है और पुनरावृत्ति होते रहने से अस्तित्व में बने रहने की ताजगी खत्म हो जाती है।"

संगति का महत्व।

3.30 संगति सुनिश्चित करते समय उपर्युक्त पहलू को स्वाभाविक रूप से ध्यान में रखना होगा, जैसा कि यह कहा गया है कि :—

"किसी विनिर्दिष्ट मामले में विनिश्चय को न तो प्रतियोगी के रूप में होना चाहिए और न किसी धनी व्यक्ति या श्वेत व्यक्ति या प्रौटेस्टेंट व्यक्ति या निर्धन व्यक्ति या बीमा कम्पनी या श्रमिक संघ या काले व्यक्ति या क्वेकर (फ्रैंड्स आफ सोसाइटी के सदस्य) या साक्षी को विशेष संवैधानिक अधिमानता तब तक देनी चाहिए जब तक कि यह उचित रूप में नहीं कहा जा सके कि संविधान द्वारा ऐसी अधिमानता प्रदान की गई है[5]।"

---

1. पिछला पैरा 3.23 देखिए।
2. आर्किबाल्ड काक्स, दि वारेन कोर्ट—कन्सटीच्यूशनल डिसीजन एज़ एन इन्स्ट्रूमेंट आफ रिफार्म, पृष्ठ 21।
3. विलियम हर्स्ट, जिसको राउल बर्गर ने—गवर्नमेंट बाई जुडिशयरी दि ट्रांसफारमेशन आफ फोर्टीन्थ एमेन्डमेंट (1977) पृष्ठ 369 पर उद्धृत किया है।
4. ए० डब्ल्यू व्हाइट हैड सांइस एण्ड दि माडर्न वर्ड (1925), पृष्ठ 281।
5. लूई हैनकिन, "सम रिफलेक्शंस आफ कन्सटीचयूशनल कन्ट्रोवर्सी" (1960-61/109 यूनिवर्सिटी आफ पेनस ला रिव्यू 637, 653।

VII संवैधानिक विधि शास्त्र का विकास

संवैधानिक विधि शास्त्र।

3.31 विचार योग्य जिस तीसरी बात की ओर उपयोगी रूप में ध्यान आकृष्ट करने की आवश्यकत हैं वह संवैधानिक विधिशास्त्र का क्रमबद्ध, विकास है। यह वांछनी है कि ऐसे विधि शास्त्र का विकास स्वतः पूर्ण और सुसम्बद्ध सिद्धान्त संहिता के रूप में होने देना चाहिए जो संवैधानिक विधि के गहन ज्ञान और उसकी सुविज्ञता के बल पर दिए गए न्यायिक विनिश्चयों से उद्भूत हुआ हो जिस सुविज्ञता के विशेष प्रकार के कार्य के साथ निरन्तर जोड़े रखने पर अधिक आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

साधारण विधि से भिन्नताएं।

3.32 संवैधानिक विधि में साधारण विधि की सरलता नहीं होती है—इस मुद्दे को विशेषज्ञता की आवश्यकता पर जोर देते समय पहले ही बताया गया है।[1] इसके साथ ही यह भी बात है कि जटिलता की ओर इसकी प्रवृति होने से यह वांछनीय है कि सुसम्बद्ध सिद्धान्त-संहिता को विकसित करने की आवश्यकता के प्रति जागरूकता होनी चाहिए।

VIII समय

समय।

3.33 संवैधानिक न्यायनिर्णयन में विशेष रुचि की चौथी और अन्तिम विचार योग्य बात समय के सम्बन्ध में हैं। यह स्वतः सिद्ध है कि जिस किसी बात पर गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता है उसके लिए समय होने की भी आवश्यकता है। उच्चतम न्यायालय में विशेष खंड सृजित करने के परिणाम स्वरूप जो कि एक फायदा होगा वह इस पहलू के बारे में है।

निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखने से उसका बहुत महत्व है:—

(1) अन्तर्ग्रस्त विवाद्यकों की गम्भीरता और जटिलता;

(2) यह प्रभाव जो संवैधानिक विवाद्यक के न्यायनिर्णयन का लोकविधि के भावी अनुक्रम पर विशेष दिशा में सम्भवतः पड़े, और

(3) संवैधानिक विवाद्यकों का समुचित निष्कर्ष निकालने के लिए न्यायालय को किस प्रकार की और कितनी सामग्री की आवश्यकता होगी।

विवाद्यकों की जटिलता।

3.34 समाज जिस प्रकार से जटिल होता जाता है उसी प्रकार से संवैधानिक न्यायनिर्णय के लिए उठने वाले विवाद्यक भी जटिल होते जाएंगे। न्यायालय "समाज के दर्द" में डूब जाएगा—मैकेली ने इस वाक्यांश का उपयुक्त प्रयोग किया है।[2] इसका अर्थ यह है कि विधि से और अधि.: की मांग की जाएगी क्योंकि जनता उससे बहुत अधिक की आशा करती है।

अतः न्यायाधीशों को अनुसंधान, चिन्तन और विचार करने के लिए पर्याप्त समय तथा उनके मस्तिष्क को आराम मिलना चाहिए। "निर्णय करने में उन्हें निर्णय का प्रारूप तैयार करते समय समीक्षात्मक पुनर्विलोकन करने के लिए समय की आवश्यकता होती है और जो कुछ भी पहले हुआ है उसके स्पष्टीकरण तथा पुनरीक्षण के लिए और भी समय की आवश्कता होती है। न्यायमूर्ति फ्रैंकफुर्त ने विसम्मति प्रकट करने वाले अपने एक निर्णय में यह कहा था कि राष्ट्र के सर्वोच्च अधिकरण को जिन दूरगामी प्रभाव वाली और नाजुक समस्याओं पर अन्तिम निर्णय करना पड़ता है उसके लिए न्यायाधीशों में से योग्यतम न्यायाधीश को भी चिन्तन तथा उच्च प्रयास करने की और इन्हें संरक्षित करने की आवश्यकता होती है।"

विश्लेषण करने के लिए समय की आवश्यकता।

3.35 न्यायालय जिस सामग्री का अवलम्ब लेता है उसका विश्लेषण करने के प्राथमिक कार्य में ही समय की आवश्यकता नहीं होती बल्कि उस सामग्री के अर्थ और न्यायालय के समक्ष तत्समय प्रस्तुत विवाद्यकों पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में भी सोचने के लिए उतने ही समय की आवश्यकता होती है। सोचविचार करना एक धीमी प्रक्रिया है, बुद्धिमता परिपक्व होने में मदिरा की ही तरह समय लगता है।

---

1. पिछले पैरे 3.5 से 3.7 तक।

2. एलेक्जेंडर मैकेली "दि केस फार ए जुरिस्प्रूडेंस आफ वेल्फैयर" कनेक्ट्स (सम्पा०) ला० एण्ड सोशल ऐक्शन 1, 40 में जिसे ए० एस० मिलर ने "सुप्रीम कोर्ट मिथ एण्ड रियाल्टी" में पृष्ठ 195 पर उद्धृत किया है।

3. डिक बनाम एन०वाई० लाइफ इन्श्योरेन्स कम्पनी (1959) 359 यू एस 437, 3 एल० इड० सैकेन्ड, 935, 948 (न्यायमूर्ति फैंकफरटर द्वारा विसम्मति)।

सामूहिक निर्णय ।

3.36 किन्तु सर्वोच्च न्यायालय (हाईऐस्ट कोर्ट) के निर्णय सामूहिक निर्णय होते हैं। वे न तो अकेली प्रस्तुतियां हैं और न दो पक्षकारों के बीच ऐसे वाद-विवाद हैं जिनमें प्रत्येक पक्षकार जल्दी ही अपनी राय कायम कर लेता है और फिर नहीं सोचता। निर्णयों में सभी के द्वारा प्रत्येक पक्ष के तर्कसंगत विचारों पर पूर्ण रूप से विचार तथा पुनर्विचार किए जाने का पूर्वानुमान किया जाता है। "पर्याप्त अध्ययन के बिना पर्याप्त चिन्तन नहीं हो सकता; पर्याप्त चिन्तन के बिना पर्याप्त विचार-विमर्श नहीं हो सकता; इनके बिना विचारों का वैसा लाभप्रद आदान-प्रदान नहीं हो सकता जो सोच-विचार करने के लिए और विद्वता पूर्ण तथा प्रभावकारी राय बनाने के लिए अनिवार्य हैं।[1]

अवकाश की आवश्यकता विकेल और ग्रिसवोल्ड के विचार।

3.37 एलेकजेन्डर बिकेल ने यह बताया है कि न्यायाधीशों के अवकाश, प्रशिक्षण और सरकार के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विद्वान व्यक्ति के तरीकों का अनुसरण करने की प्रवृत्ति होती है या होनी चाहिए। केवल तर्क बुद्धि सब कुछ नहीं बता सकती। वह पूर्वोक्त तथ्यों से निष्कर्षों को केवल जोड़ सकती है। अतः यदि पूर्वोक्त तथ्यों से अपने तर्कों के आधार पर कोई सार्थक निष्कर्ष निकालने के लिए कुछ अधिक सन्दर्भ-सामग्री होनी चाहिए। इस प्रकार मूल विचार यह प्रतीत होता है कि संवैधानिक विधि नैतिक दर्शनशास्त्र के संबंध में है। ऐसे दर्शनशास्त्र का उपयोग करने के लिए सही रास्ता विद्यमान है और इसकी पहचान करने तथा इसमें लगे रहने के लिए न्यायाधीश अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक सक्षम हैं।

ग्रिसवोल्ड[2] ने भी निम्नलिखित शब्दों में अवकाश की आवश्यकता पर जोर दिया है:—

> "मैंने न्यायालय के लिए कोई राय कभी नहीं लिखी है किन्तु मैंने लेखों और संक्षिप्त विवरणों और परीक्षा-प्रश्नों को भी लिखने का प्रयास किया है और मुझे इस बात की कुछ जानकारी है कि किसी के मस्तिष्क में विधिक विचार कैसे विकसित होते हैं। कौन सी समस्याएं और कठिनाइयां हैं, कैसी खोज करनी पड़ती है और कितनी निराशा होती है, स्पष्टता और यथार्थता के लिए कितना प्रयत्न करना पड़ता है। और अन्ततः, कितना अधिक परिश्रम लिखी गई किसी विधिक कृति में अंग्रेजी की वाक्य-रचना के लिए करना पड़ता है।"

डाक्टर एडवर्ड मैकहवीती ने सुनवाई में अन्तिम न्यायालय के लिए अवकाश उपलब्ध होने की आवश्यकता पर स्पष्ट रूप से जोर दिया है। उन्होंने हमारी प्रश्नावली पर अपने विचारों से हमें लाभान्वित कराने की कृपा की है।[3] उन्होंने इस पर जो कुछ कहा है वह इस प्रकार है:—

> "अन्तिम अपील अधिकरण तभी प्रभावकारी रूप से कार्य कर सकता है जब उसे अपने समक्ष आने वाले मामलों पर समुचित रूप से विचार, अनुसन्धान और विनिश्चय करने के लिए पर्याप्त समय मिले। न्यायालय का अपने कार्यभार की मात्रा और अपने समक्ष आने वाले मामलों की संख्या पर किसी न किसी रूप में वैवेकिक नियंत्रण होना अन्तिम अपील अधिकरण के कार्य का आवश्यक और अपरिहार्य भाग प्रतीत होता है। इसका अभिप्राय यह है कि ऐसे अन्तिम अधिकरण में उसके समक्ष आने वाले मामलों के बारे में अग्रिम रूप से पर्याप्त छानबीन करने की प्रक्रिया अवश्य होनी चाहिए। इससे उसको इस बात की पूर्ण वैवेकिक शक्ति होनी चाहिए कि वह मामलों के लोक-महत्व के बारे में प्राथमिक निष्कर्ष के अनुसार उन्हें विचारार्थ स्वीकार या अस्वीकार करे।
>
> अन्तिम अपील अधिकरण को भी अन्ततः इस बात से नहीं आंका जाना चाहिए कि वह कितने अधिक मामलों का विनिश्चय करता है बल्कि उन विनिश्चयों के संवैधानिक और विधिक प्रभाव तथा महत्व की दृष्टि से आंका जाना चाहिए।"

---

1. डिक बनाम एन० वाई० लाइफ इन्श्योरेंस कम्पनी (1959) 3 एल० इड० सैकेंड 935, 949 वर्ट, कन्स्टीट्यूशनल पालिटिक्स, पृष्ठ 149-150 भी देखिए।
2. इरविन एन० ग्रिसवोल्ड "सुप्रीम कोर्ट—1979 टर्मफ़ोरवर्ड" (1960-61) 74 हारवर्ड ला रिव्यू-पृष्ठ 83-84।
3. पिछला पैरा 1.7 देखिए।

ix फायदों का संक्षेप में वर्णन

3.38 यह भली भांति ज्ञात है कि किसी विशेष घटना के बारे में ऐसे व्यक्ति की, जिसके साथ वह घटना होती है, प्रतिक्रिया का रूप और उसकी तीव्रता केवल उस घटना पर निर्भर नहीं करती बल्कि इस बात पर निर्भर करती है कि उस घटना का अनुभव करने वाला व्यक्ति उसके बारे में क्या सोचता है। निस्सन्देह यह बात भावनात्मक अनुभव के बारे में प्रधानतया सच है किन्तु अधिकांश बौद्धिक क्रियाकलापों के बारे में भी यह बहुत हद तक सच है। न्यायाधीश को अपना सर्वोत्तम योगदान करने में समर्थ बनाने के लिए उसके पास पर्याप्त समय होना चाहिए। उसे विशेषज्ञता से मिलने वाले फायदे मिलने चाहिए। उस संगति (कन्सिसटेन्सी) पर ध्यान देना चाहिए और अनम्यता (रिजिडिटी) से बचने की इच्छा रखनी चाहिए। किन्तु कम से कम इतना सुनिश्चित करना तो वांछनीय हो सकता है कि सम्पूर्ण रूप से यह संस्था सबसे अच्छी तरह संगठित हो।

घटना का अनुभव

3.39 जैसा कि कहा गया है, विधि में महानता कोई मानवीकृत (स्टैन्डर्डाइज्ड) गुण नहीं है और ऐसे तत्व भी नहीं हैं जो महानता प्राप्त करने के लिए आपस में मिल सकें, . . महानता तीक्षण बुद्धि द्वारा गहरे पैठ कर किए गए विश्लेषण की शक्ति से प्रकट हो सकती है जैसा कि ब्रैडले में है, यह (महानता) ऐसे दृष्टिकोण पर अटल रहने से हो सकती है जो लम्बी न्यायिक परम्परा में बलपूर्वक अभिव्यक्त किया गया है। यह ऐसे सुसंबद्ध न्यायिक दर्शनशास्त्र से व्युत्पन्न हो सकती है जो दृढ़तापूर्वक और प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त किया गया है और तत्समय प्रचलित रीति (जर्मन शब्द ट्साइटगाइस्ट) द्वारा समर्थित है जिसका काफी भाग स्वतः उस दर्शनशास्त्र को प्रतिबिम्बित करता था, जैसा कि होम्स के बारे में सच था, यह विपुल अनुभव और रचनात्मक बुद्धि का यक्तियुक्त उपयोग करके प्राप्त की जा सकती है जिसका उदाहरण स्वयं बैन्डीस हैं। यह ऐसे लोकप्रिय व्यक्तित्व के प्रभाव का परिचायक हो सकता है जो जनप्रिय विधि की सेवा में लगा हो जैसा कि काडौजो के जीवन से साबित होता है। यह इस प्रकार की शक्ति से आ सकती है जो दूसरों पर नैतिक प्राधिकार का प्रभाव डालती है, जैसा कि ह्यूज में है[1]।

विधि में महानता लाने वाली बातें।

3.40 जहां उपर्युक्त गुण विद्यमान नहीं हैं वहां ढांचे में किसी सुधार से ये गुण नहीं आ सकते किन्तु वे ऐसा वातावरण बनाने में सहायता कर सकते हैं जिसमें वे उस स्थान पर विकसित होंगे जहां वे बीज रूप में हैं।

वातावरण बनाया जाना।

3.41 हमने संवैधानिक न्यायनिर्णयन के कुछ पहलुओं पर जो जोर दिया है उससे किसी भी तरह यह नहीं समझना चाहिए कि हम साधारण विधि के प्रश्नों के न्यायनिर्णयन को कम महत्व देते है। हमने इससे पहले जो विचार-विमर्श किया है उसका अभिप्राय यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि उपर्युक्त पहलुओं का कोई महत्व साधारण विधि के विवाद्यकों के अवधारण में नहीं है। असंवैधानिक विधि की कुछ शाखाओं में भी विशेषज्ञता वांछनीय हो सकती है। न्यायनिर्णयन में संगति का और सुसंबद्ध सिद्धान्त संहिता के विकास का महत्व असंवैधानिक विधि के अनेक क्षेत्रों में (जैसे वाणिज्यिक विधि में) है। इसके अतिरिक्त, सामाजिक बुद्धिमता और भविष्य की समस्याओं की कल्पना करने की योग्यता किसी ऐसे विषय के लिए बहुत मूल्यवान बातें हैं जिसके बारे में विधि अभी तक संहिताबद्ध नहीं की गई है (जैसे अपकृत्य की विधि) अथवा संहिताबद्ध कर दिए जाने पर भी न्यायाधीश को उस विषय में व्यापक विवेकाधिकार प्रयोग करने का अवसर मिल सकता है (जैसे वैवाहिक वादों में समुचित राहत देना या दाण्डिक विधि के अधीन दण्ड देना)। यह भी नजरअन्दाज नहीं करना है कि चुनाव का तत्व, जिसके प्रति हमने संवैधानिक विधि की मुख्य बातों पर इससे पहले विचारविमर्श करते समय निर्देश किया है, अनेक मामलों में, जिनके अन्तर्गत किसी कानूनी उपबन्ध का निर्वचन

साधारण विधि के सम्बन्ध में न्यायिक प्रक्रिया की आवश्यकताएं।

1. वाल्टर एफ० मर्फी एण्ड सी० हुएमन प्रिटशाट, कोर्टस, जजेज, पालिटिक्स (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ 179-180।

किए जाने के मामले भी हैं, सबसे पहले ध्यान देने योग्य निर्णायक तत्व हो सकता है। विधि-साहित्य में ऐसे युगान्तरकारी विनिश्चयों की भरमार है जिनमें इस प्रश्न पर सबसे पहले ध्यान दिया गया है वरना वे विनिश्चय न्यायिक विधि-निर्माण के परम्परागत मानकों का अतिक्रमण किए बिना भिन्न प्रकार के हो सकते थे। यह कहा गया है कि न्यायाधीश यथापूर्व स्थिति बनाए रखने वाले द्वारपाल हैं किन्तु ऐसे द्वारों के बाहर के क्षेत्रों में प्रश्नरूपी घोडों की भीड़ है और प्रत्येक घोड़ा दौड़ में प्रथम आने के लिए तेजी से दौड़ रहा है। अब न्यायाधीश का यह विनिश्चय करना है कि कौन सा घोड़ा जीत कर प्रथम पुरस्कार पाएगा। यह बात संवैधानिक न्यायनिर्णयन के बारे में जिस प्रकार सच है उसी प्रकार यह साधारण विधि के क्षेत्र में न्यायिक विधि-निर्माण के बारे में भी सच है। किन्तु, जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, यह भी बात है कि संवैधानिक प्रश्न का विनिश्चय समय और विस्तार दोनों की दृष्टि से दूरव्यापी प्रतिक्रियाएं उत्पन्न कर सकता है। इसके अतिरिक्त संविधान की व्याख्या करना समाज की बुनियादी दस्तावेज की, और उस विधि की, जो मूल है तथा उन सिद्धांतों की, जो साधारण विधि के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, व्याख्या करना है। संवैधानिक विधि का जो "उच्चतर विधि" का दर्जा है, उसके कारण यह वांछनीय है कि संवैधानिक न्याय निर्णयन में विशेषज्ञता, संगति, सुसम्बद्ध सिद्धान्त के पहलुओं पर और चिन्तन करने तथा परिपक्व सामूहिक निर्णय देने के लिए समय दिए जाने पर विशेष ध्यान दिया जाए क्योंकि ऐसे न्यायनिर्णयन में इन सब की आवश्यकता अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक है।

अध्याय 4

संविधान का संशोधन

4.1 हमें इस प्रक्रम पर यह उल्लेख कर देना चाहिए कि यदि उच्चतम न्यायालय में संवैधानिक खण्ड सृजित करने के प्रस्ताव के पक्ष में अन्ततः राय कायम की जाती है तो कुछ बातों के बारे में संविधान के संशोधन की आवश्यकता हो सकती है। इस संबंध में संवैधानिक स्थिति बहुत संक्षेप में बता देना सुविधाजनक होगा। संसद को संघ-सूची में प्रमाणित विषयों के सम्बन्ध में विधियां बनाने की निश्चायक शक्ति संविधान के अनुच्छेद 246 (1) के अधीन प्राप्त हैं। संघ-सूची की प्रविष्टि 77 निम्नलिखित रूप में है :— संवैधानिक खण्ड—संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता।

"77. उच्चतम न्यायालय का गठन, संगठन, अधिकारिता और शक्तियां (जिनके अन्तर्गत उस न्यायालय का अवमान है) और उसमें ली जाने वाली फीस; उच्चतम न्यायालय के समक्ष विधि-व्यवसाय करने के हकदार व्यक्ति।"

4.2 उच्चतम न्यायालय के संवैधानिक खण्ड के लिए प्रस्ताव वास्तव में दो भागों में है। पहली बात यह है कि इसमें ऐसा स्थायी खण्ड सृजित करने की परिकल्पना की गई है जो अनन्य रूप से संवैधानिक प्रश्नों पर विचार करे और एक दूसरा स्थायी खण्ड असंवैधानिक मामलों पर विचार करे। दूसरी बात यह है कि उच्चतम न्यायालय में नियुक्त न्यायाधीश प्रारम्भ से ही किसी एक विशेष खण्ड में नियुक्त किए जाएंगे। दो भागों में प्रस्ताव—प्रथम भाग का संवैधानिक पहलू।

इस प्रस्ताव के प्रथम भाग के बारे में यह कहा जा सकता है कि वह "उच्चतम न्यायालय के गठन और संगठन" को मुख्यता विनियमित करने के लिए है—यह विषय संघ-सूची की प्रविष्टि 77 के अन्तर्गत आता है और इस प्रविष्टि के अधीन अधिनियमित साधारण विधान द्वारा कार्यान्वित किया जा सकता है।[1]

उच्चतम न्यायालय में संवैधानिक खण्ड सृजित करने वाला विधान संविधान के अनुच्छेद 124 (1) की, जिसमें उच्चतम न्यायालय की स्थापना की चर्चा की गई है, अनुपूर्ति करेगा किन्तु उसके किसी अभिव्यक्त उपबन्ध के विरोध में नहीं होगा। इसके अतिरिक्त, संविधान के अनुच्छेद 145 (3) का, (जो संवैधानिक प्रश्नों का विनिश्चय करने के लिए न्यायाधीशों की न्यूनतम संख्या निश्चित की जाने के सम्बन्ध में है) अनुपालन फिर भी होता रहेगा।

4.3 किन्तु हमें इस बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिए कि अमरीका में जो प्रस्ताव (अन्य बातों के साथ-साथ) उस देश के उच्चतम न्यायालय को दो खण्डों में विभक्त करने के लिए विवादग्रस्त है उसके बारे में ऐसा प्रतीत होता है कि मुख्य न्यायमूर्ति वारेन बर्गर ने यह विचार प्रकट किया है कि संविधान का संशोधन आवश्यक हो सकता है। मुख्य न्यायमूर्ति के साथ एक प्रश्नोत्तर—सत्र रिकार्ड किया गया है और उस रिकार्ड को "स्पैन" पत्रिका में उद्धृत किया गया है।[2-3] एक सुझाव, जिस पर विचार-विमर्श किया गया था, यह था कि उच्चतम न्यायालय में न्याय की गुणवत्ता (क्वालिटी) की समस्या की जांच, उसके बढ़ते हुए कार्यभार को ध्यान में रखते हुए करने के लिए एक आयोग बनाया जाए। मुख्य न्यायमूर्ति ने यह बात बतायी थी कि आयोग की रिपोर्ट की प्रतीक्षा किए बिना कांग्रेस को सर्किट न्यायाधीशों में से लगभग 26 न्यायाधीशों का एक विशेष अस्थायी पैनेल बनाना चाहिए और इन 26 न्यायाधीशों में से सात सदस्यीय पैनेलों को उन मामलों पर विचार करना चाहिए जिनकी अन्यथा सुनवाई उच्चतम न्यायालय द्वारा की जाएगी। इन पैनेलों को ऐसे मामलों की सुनवाई तो करनी ही चाहिए जिसमें सर्किट न्यायालय द्वारा परस्पर विरोधी विनिर्णय (रूलिंग) दिए गए हैं। पैनेल के विनिर्णयों का पुनर्विलोकन उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जा सकता है। मुख्य न्यायमूर्ति ने इस तथ्य की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया था कि कुछ देशों में विभिन्न प्रकार के वादों के लि अमरीका के उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति बर्गर के विचार।

1. प्रविष्टि 77 के पाठ के लिए पिछला पैरा 4.1 देखिए।
2. दि क्वालिटी आफ जस्टिस (एक मुलाकात) का अभिलेख, स्पैन, अक्तूबर 1983, पृष्ठ 35-36।
3. पिछला पैरा 3.14 भी देखिए।

विभिन्न शीष न्यायालय हैं। उस समय यह प्रश्न उठाया गया था कि क्या इन प्रस्तावों के कारण संवैधानिक संशोधन करना पड़ेगा और इस मुद्दे पर जो सुसंगत प्रश्न तथा उत्तर थे उनका सारांश निम्नलिखित रूप में है :—

"प्रश्न—क्या हमारी अपीलीय प्रक्रियाओं में व्यापक परिवर्तन करने के लिए संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता होगी ?

उत्तर– उच्चतम न्यायालय के अधीन मध्यवर्ती न्यायालय के सृजन के लिए न तो ऐसे संशोधन और न इस अस्थायी पैनेल की आवश्यकता होगी।

प्रश्न – दो या तीन उच्चतम न्यायालयों को गठित करने के बारे में आप को क्या कहना है ?

उत्तर –अधिकांश न्यायाधीश, वकील और विधिक विद्वान यह निश्चित रूप से सोचते होंगे कि इसके लिए संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता है क्योंकि यह विचार व्यापक रूप से स्वीकृत है कि संविधान के अनुच्छेद III का, जिसमें यह कहा गया है कि "एक उच्चतम न्यायालय" होगा, अर्थ यह है कि उच्चतम न्यायालय खण्डों या पैनेलों में नहीं बैठ सकता। अनेक उच्चतम न्यायालयों का सृजन समस्या को हल करने के लिए कठोर उपाय होगा किन्तु आयोग को सभी प्रकार की राय पर विचार करना चाहिए।

अर्ल वारेन ने भी राष्ट्रीय अपील न्यायालय (नेशनल कोर्ट आफ अपील्स) सृजित करने के प्रस्ताव के प्रसंग में उपर्युक्त मुद्दे की चर्चा पहले की थी। यहां जर्नल आफ अमरेकिन बार एसोसिएशन[1] में प्रकाशित एक लेख[1] का सुसंगत अंश उद्धृत किया जा रहा है :—

"इस समस्या का अधिक यथार्थ रूप से पुन: कथन करना यह प्रश्न उठाना है कि क्या अनुच्छेद III के इस आदेश का कि केवल एक उच्चतम न्यायालय होगा उस प्रस्तावित विभाजन से अतिक्रमण होता है जो केवल उच्चतम न्यायालय में निहित उत्प्रेषण (सर शियारेराई) की अधिकारिता का प्रयोग करने को राष्ट्रीय अपील न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के बीच बांट देने के लिए है। जब उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता का प्रयोग किया जाता है तब क्या हमने संवैधानिक निर्बन्धन का उल्लंघन करके दो उच्चतम न्यायालयों का सृजन नहीं किया ?"

प्रस्ताव के द्वितीय भाग का संवैधानिक पहलू।

4.4 संवैधानिक खण्ड सृजित करने के प्रस्ताव के द्वितीय भाग म यह अनुध्यात है कि न्यायाधीशों को किसी विशिष्ट खण्ड में प्रारम्भ से ही नियुक्त किया जाएगा। इसके लिए संविधान का संशोधन करना होगा। इसी कारण से इस रिपोर्ट में विस्तारपूर्वक बतायी गई स्कीम में यह अनुध्यात है कि नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी [और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा केवल समनुदेशन (एसाइन्मेन्ट) कर दिए जाने से नहीं]। यह स्पष्ट है कि इसका प्रबन्ध उन नियमों द्वारा नहीं किया जा सकता जो संविधान के अनुच्छेद 145(2) में बनाए गए हैं। यह अनुच्छेद निम्नलिखित रूप में है :—

"(2) खण्ड (3) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए इस अनुच्छेद के अधीन बनाए गए नियम, उन न्यायाधीशों की न्यूनतम संख्या नियत कर सकेंगे जो किसी प्रयोजन के लिए बैठेंगे तथा एकल न्यायाधीशों और खण्ड न्यायालयों की शक्ति के लिए उपबन्ध कर सकेंगे।"

इसलिए संविधान का संशोधन उपयुक्त प्रयोजन की प्राप्ति के लिए आवश्यक हो जाता है। इस प्रयोजन के लिए साधारण विधान या कानूनी नियम पर्याप्त नहीं होंगे।

राज्यों द्वारा अनुसमर्थन।

4.5 यह भी ज्ञात है कि क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 124 के बारे में प्रश्न उठा है और यह अनुच्छेद संविधान के भाग 5 के अध्याय 4 में आता है इसलिए संविधान के अनुच्छेद 368(2) के मुख्य पैरा में विहित प्रक्रिया अर्थात् (जब यह विधेयक प्रत्येक सदन में उस सदन की कुल संख्या के बहुमत द्वारा तथा उस सदन के उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई बहुमत द्वारा पारित कर दिया जाता है तब) का अनुपालन करने के अलावा अनुच्छेद 368(2) के परन्तुक (कम से कम आधे राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा पारित इस आशय के संकल्पों द्वारा उन विधान मण्डलों का अनुसमर्थन भी अपेक्षित होगा) का भी अनुपालन करना होगा। उक्त परन्तुक भाग 5 के अध्याय 4 (संघ की न्यायपालिका) को लागू होता है।

1. (1973) ए० बी० ए० जे०, पृष्ठ 721 से 730 तक, पृष्ठ 729 पर।

4.6 अन्त में यह प्रश्न उठता है कि क्या संवैधानिक खण्ड सृजित करने के प्रस्ताव का प्रभाव संविधान की बुनियादी बात पर पड़ेगा ? न्यायिक पुनर्विलोकन को सामान्यतया संविधान की एक साधारण बात मानी जाती है और इसे छीन लेने या निर्बन्धित करने का प्रयत्न करना व्यर्थ होगा किन्तु जिस प्रकार का संगठनात्मक परिवर्तन विचाराधीन है उससे न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति में कोई कमी नहीं होती है और इसलिए संविधान की किसी बुनियादी बात पर प्रभाव नहीं पड़ सकता।

क्या बुनियादी बात पर प्रभाव पड़ेगा।

4.7 उपर्युक्त प्रयोजन के लिए संविधान का संशोधन करते समय[1] ऐसे संशोधन में अनेक सम्बद्ध बातों के लिए उपबन्ध किया जाना भी आवश्यक हो सकता है। ऐसे संशोधन में अनेक परिणामिक बातों के लिए उपबन्ध किया जाना चाहिए या संसद् को ऐसी विधि बनाने के लिए सशक्त किया जाना चाहिए जिसमें एक ऐसा भी उपबन्ध हो जो संसद् को साधारण विधान द्वारा ऐसी बातों का विनियमन करने के लिए सशक्त करे जो उच्चतम न्यायालय में दो खण्ड के सृजन से उत्पन्न हों। उपर्युक्त बातों के अलावा, प्रस्तावित संवैधानिक खण्ड से संबंधित विस्तार की कुछ बातों की चर्चा भी करनी होगी जिन पर विचार-विमर्श इस रिपोर्ट में आगे एक अध्याय में किया गया है।[2]

सम्बद्ध और पारिणामिक उपबन्ध।

---

1. पिछले पैरे 4.4 से 4.6 तक। आगे पैरा 6.7 भी देखिए।
2. आगे अध्याय 6 देखिए।

अध्याय 5

यूरोप में संवैधानिक न्यायालय

संवैधानिक न्यायालय ।

5.1 संवैधानिक न्यायालय की कल्पना करना कोई नई बात नहीं है। कुछ यूरोपीय देशों में ऐसे न्यायालय हैं और इसीलिए उनके उदाहरणों के संदर्भ में प्रश्नावली प्रकाशित की गई थी। यह प्रश्नावली जिस अध्ययन के लिए प्रकाशित की गई थी वैसा अध्ययन करने के लिए यूरोपीय अनुभव पर्याप्त न्यायोचित्य प्रदान करता है।

इससे पहले कि हम अपनी सिफारिशें देने के लिए अग्रसर हों यूरोप में "संवैधानिक न्यायालय" के नाम से कार्य कर रहे न्यायालयों पर नजर डाल लेना हितकर होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यूरोप के बाहर भी संवैधानिक न्याय-निर्णयन एक सुविदित तथ्य है। अमरीका का उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट), जो मुख्यतया एक संवैधानिक अधिकरण है, इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। किन्तु वर्तमान प्रयोजन के लिए "संवैधानिक न्यायालय" नाम वाले न्यायालय विशेष रुचि के विषय हैं।

आस्ट्रिया।

5.2 यूरोप के अनेक देशों में संवैधानिक न्यायालय विद्यमान हैं। इस विषय पर विचार अक्षरादि क्रम के अनुसार आस्ट्रिया[1] से प्रारम्भ किया जा सकता है। आस्ट्रिया के संवैधानिक न्यायालय की अधिकारिता बहुत ही विस्तृत है। वह केवल उन संवैधानिक विवादकों का ही विनिश्चय नहीं करता जो आस्ट्रिया के संविधान में दिए गए हैं बल्कि उसे इसके अतिरिक्त एक अन्य रुचिकर प्रकार की अधिकारिता प्राप्त है। आस्ट्रिया के संविधान में निम्नलिखित उपबन्ध (अनुच्छेद 145 में) किया गया है :—

> "145. (आस्ट्रिया का) संवैधानिक न्यायालय अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अतिक्रमणों का निर्णय विशेष संघीय विधि के उपबन्धों के अनुसार सुनाएगा।"

आस्ट्रिया के संवैधानिक न्यायालय में सभापति, उपसभापति, अन्य बारह सदस्य और छह "प्रतिस्थानी" सदस्य होते हैं[2]।

फ्रांस : फ्रांस की संवैधानिक परिषद्।

5.3 फ्रांस की एक संवैधानिक परिषद् है किन्तु उसका कोई संवैधानिक न्यायालय नहीं है। यह अत्यन्त विवादास्पद है कि कैसे इस परिषद् को कामन ला वाले देशों में परम्परागत न्यायालयों के सदृश जाना जाने लगा। एक अर्थ में फ्रांस की संवैधानिक परिषद् स्वयं एक अलग कोटि में है।[3]

फ्रांसीसी संविधान के संवैधानिक परिषद् को किसी कानून का संविधान के अनुकूल होने के बारे में निर्णय सुनाने के लिए प्राधिकृत किया है। फ्रांसीसी संविधान के सुसंगत अनुच्छेद का तात्विक अंश निम्नलिखित रूप में है[4] :—

> "61. मूल विधियों को प्रख्यापित किए जाने से पहले और संसदीय सभाओं के नियमों को प्रवर्तित किए जाने से पहले, संवैधानिक परिषद् के समक्ष अवश्य प्रस्तुत किया जाना चाहिए जो उनकी संवैधानिकता का विनिर्णय करेगी।"

इसमें कोई संदेह नहीं कि संवैधानिक परिषद् की अधिकारिता को बाद में बढ़ाया गया।[5] किन्तु ऐसा होने पर भी फ्रांस की संवैधानिक परिषद् भारत के उच्चतम न्यायालय या अमरीका के उच्चतम न्यायालय के समान नहीं है।

फ्रांस में कू द कासेशां।

5.4 फ्रांस की विधिक पद्धति में न्यायिक व्यवस्था के क्रम में सर्वोच्च न्यायालय कू द कासेशां है। इस न्यायालय की स्थापना क्रान्ति के समय 27 नवम्बर, 1790 की विधि द्वारा हुई थी इसका संगठन 1800 की विधि द्वारा बनाया गया। इस न्यायालय की बैठकें चैम्बरों में होती हैं और 1967 में न्यायालय के अद्यतन

---

1. आस्ट्रिया का संविधान, अनुच्छेद 137 से 138 तक।
2. आस्ट्रिया का संविधान, अनुच्छेद 147 (1)।
3. एडवर्ड मैकहवीनी, बुक रिव्यू इन समर (1981) खण्ड 29 सं० 3 ए०जे०सी०एल० 535, 536।
4. फ्रांसीसी संविधान, अनुच्छेद 61।
5. आगे पैरा 5.5 देखिए।

पुनर्गठन के अवसर पर एक "मिश्रित चैम्बर" बनाया गया। अन्तिम विधि का अनुच्छेद (जहां तक वह तात्विक है), निम्नलिखित रूप में है :—

"कोर्ट आफ कासेंश के विनिश्चय उसके किसी एक चैम्बर द्वारा या मिश्रित चैम्बरों या उसकी पूर्ण सभा द्वारा दिए जाते हैं।"

अद्यतन विधि के अनुच्छेद 14 में ऐसे अवसरों के लिए उपबन्ध हैं जब मिश्रित चैम्बर गठित किया जाता है—जैसा कि किसी ऐसे मामले में होता है जिसमें सिद्धान्त का प्रश्न या कोई प्रश्न सामान्यतया अनेक चैम्बरों की अधिकारिता के अन्तर्गत आता है या किसी प्रश्न की प्रकृति इस प्रकार की है कि उसे हल करने के कारण निर्णयों में असंगति होती है। अनेक स्थितियों में मिश्रित चैम्बर के समक्ष सुनवाई आज्ञापक है, उदाहरण के लिए, जब महा-समाहर्ता (प्रौक्योरर जनरल) ऐसी सुनवाई के लिए अनुरोध करता है या कौन्सिल द इता का प्रथम सभापति इसके लिए आदेश देता है तथा बोर्ड में सामान्यतया एक ज्येष्ठ न्यायाधीश और अनेक चैम्बरों के दो अन्य न्यायाधीश होते हैं। जब न्यायालय मिश्रित चैम्बर के रूप में बैठता है तब महासमाहर्ता (प्रौक्योरर जनरल) को उसे अवश्य सम्बोधित करना चाहिए।[1]

5.5 फ्रांस की संवैधानिक परिषद् गठन और सदस्यता की दृष्टि से न्यायिक निकाय नहीं है और ठीक-ठीक अर्थों में एक विधिक निकाय भी नहीं है। इसमें नौ सदस्य होते हैं जिनमें से एक-तिहाई सदस्य गणराज्य के राष्ट्रपति द्वारा, एक-तिहाई सदस्य संसद् के निचले सदन के अध्यक्ष (स्पीकर) द्वारा और एक-तिहाई सदस्य सीनेट के पीठासीन अधिकारी द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाते हैं[2]। 1974 में इसकी अधिकारिता का विस्तार किया गया था जिससे कि संसद् के निचले सदन के 60 सदस्यों या सीनेट के 60 सदस्यों के किसी ग्रुप को परिषद् से किसी संवैधानिक प्रश्न पर विचार करने की मांग करने की अनुमति मिल सके। इसी से फ्रांस की संवैधानिक परिषद् की यह प्रवृत्ति[3] बन गई कि वह यह विनिश्चय करके कि विधान की परियोजनाएं संवैधानिक प्रश्नों के अनुकूल हैं, या नहीं, कार्यपालिका की नीति बनाने की शक्ति पर नियंत्रण रखना चाहती है। **फ्रांस की संवैधानिक परिषद् अधिकारिता और कृत्य।**

इस प्रवर्ग में निम्नलिखित विनिर्णय (रूलिंग) आते हैं :—

(क) गर्भपात को वैध करने के बारे में संवैधानिक परिषद् का विनिर्णय जो 1975 में फ्रांस की संसद् द्वारा निचले सदन के सरकारी बहुमत वाले सदस्यों की प्रेरणा पर दिया गया ;

(ख) साधारण कानून में सिविल सेवकों से संबंधित संशोधनों पर संवैधानिक परिषद् का विनिर्णय जो 1976 में दिया गया;

(ग) तलाशी और अभिग्रहण करने की पुलिस की शक्तियों के बारे में संवैधानिक परिषद् का विनिर्णय जो 1977 में दिया गया ; और

(घ) सम्भवतः वह विनिर्णय जो राज्य-क्षेत्रों में से किसी राज्यक्षेत्र के प्रस्तावित विलगाव के आत्मनिर्णय र संवैधानिक सिद्धान्त को लागू किए जाने के बारे में संवैधानिक परिषद् द्वारा 1975 में दिया गया।[4]

5.6 फ्रांस की संवैधानिक परिषद् के कार्यों को दिखाने के लिए उपर्युक्त सामग्री प्रस्तुत की गई है। हम पहले ही अपना विचार[5] प्रकट कर चुके हैं कि अपने संविधान की मुख्य बातों को ध्यान में रखते हुए भारत में ऐसी कोई संस्था स्थापित करना सम्भव नहीं है। **भारत में संवैधानिक परिषद् साम्य नहीं।**

5.7 अब हम पश्चिमी जर्मनी की चर्चा करें। जर्मन संघ गणराज्य की मूल विधि में जर्मन गणराज्य का ढांचा, उसके अंग और उसके कार्यों का अधिकथन किया गया है। इस विधि के अन्तर्गत मूल नियम भी हैं जिनके अनुसार संघ के संपूर्ण राष्ट्रीय जीवन और संघीय लेंड डर (फेडरल लेन्डर) के कार्य होने **पश्चिमी जर्मनी में संवैधानिक ढांचा।**

1. मनफ्रेड साइमन "इन्फोर्समेंट आफ ई० ई० सी० ला० इन फ्रांस-II" (1976) 92-एल० क्यू० आर० 85, 86।

2. फ्रांस का संविधान अनुच्छेद 56।

3. एडवर्ड मैकहवीनी, बुक रिव्यू इन (समर 1981) खण्ड 29 सं० 3 ए० जे० सी० एल० 535, 536।

4. एडवर्ड मैकहवीनी, बुक रिव्यू इन (समर 1981) खण्ड 29 सं० 3 ए० जे० सी० एल० 535, 536।

5. पिछला पैरा 2.6।

हैं। इस विधि में ऐसे अधिकारों और स्वतंत्रताओं की भी सूची दी गई है जिनके लिए एक नागरिक हकदार है। इसमें लोकतंत्रात्मक और संवैधानिक व्यवस्था की अनिवार्य गारन्टी के रूप में शक्ति के कार्यों का वितरण अभिलिखित है। मूल विधि के जन्मदाताओं ने थर्ड पावर (तीसरी शक्ति) को विशेष रूप से मजबूत हैसियत प्रदान की है। उन्होंने संवैधानिक अधिकारिता की स्थापना की है जो इस बात की गारन्टी देने के लिए है कि राज्य के सभी अंगों द्वारा संविधान (मूल विधि) का आदर किया जाएगा। अनेक विदेशों में यह कार्य उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट आफ जस्टिस) द्वारा किया जाता है, जैसे अमरीका में अमरीका के उच्चतम न्यायालय द्वारा जो न्याय के अपने संवैधानिक प्रशासन के कारण ही प्रसिद्ध है या स्वीजरलैन्ड में संघ न्यायालय (फैडरल कोर्ट) द्वारा। दूसरी और पश्चिमी जर्मनी के संघीय गणराज्य में इस प्रयोजन के लिए एक संघीय संवैधानिक न्यायालय सृजित किया गया है जिसे संस्थागत रूप से स्वतंत्र किया गया है। इसका उद्घाटन 1951 में किया गया। संघीय न्यायालय (फैडरल कोर्ट आफ जस्टिस) की तरह इसकी बैठकें कार्लरुह में होती हैं।

जनता की नजरों में न्यायालय।

5.8 यंग इन्स्टीच्यूट से अभी तक सम्बद्ध होते हुए भी वैस्ट जर्मन कन्स्टीट्यूशनल कोर्ट ने जिसकी स्थापना 1951 में हुई---शीघ्र ही जनता की नजरों में अपने को एक संस्था के रूप में प्रतिष्ठित कर लिया और इसका मुख्य कारण यह है कि उसे मूल मानवीय अधिकारों पर विचार करने की अधिकारिता प्राप्त है।[1]

क्षमता।

5.9 संघीय संवैधानिक न्यायालय (फैडरल कन्स्टीट्यूशनल कोर्ट) के क्रियाकलाप के विधिक आधार हैं---मूल विधि के अनुच्छेद 92–94, 99 और 100 तथा 12 मार्च, 1951 की संघीय संवैधानिक न्यायालय संबंधी विधि (जिसका अनेक बार संशोधन किया गया) : संघीय संवैधानिक न्यायालय[2] की क्षमताएं निम्नलिखित ग्रुपों में विभाजित की जा सकती हैं:---

(क) मानक-जांच की प्रक्रिया (अनुच्छेद 93(1), पैरा 1)

(ख) संवैधानिक अंगों, संघ (फेडरेशन) और अलग-अलग लाइन्डर के बीच तथा परस्पर लाइन्डर के बीच विवाद प्रक्रिया (अनुच्छेद 93(1), पैरे 2, 3, 4), अनुच्छेद 93(1) पैरे 4क, 4ख

(ग) असंवैधानिकता का परिवाद,

(घ) अन्य प्रक्रियाएं (अनुच्छेद 93, पैरा 5)।

पश्चिमी जर्मनी म अधिकारिता

5.10 पश्चिमी जर्मनी के संविधान में निम्नलिखित उपबन्ध हैं जो जर्मन संघ[3] गणराज्य के संवैधानिक न्यायालय की अधिकारिता को इस प्रकार परिनिश्चित करते हैं:—

"93 (1) संघीय संवैधानिक न्यायालय (पश्चिनी जर्मनी का) निम्नलिखित विनिश्चय करेगा:—

1. इस मूल विधि (बैसिक ला) का निर्वाचन ऐसे विवादों की दशा में जो सर्वोच्च संघीय अंग के या ऐसे अन्य सम्बद्ध पक्षकारों के जिन्हें इस मूल विधि या सर्वोच्च संघीय अंग के प्रक्रिया-नियमों द्वारा उनके अधिकार प्रदान किए गए हैं, अधिकारों और कर्तव्यों के विस्तार के बारे में हों;

2. संघीय विधि या लैण्ड विधि का इस मूल विधि के साथ प्रारूपिक और तात्विक रूप में अनुकूल होने के संबंध में अथवा लेण्ड विधि का अन्य संघीय विधि के साथ अनुकूल होने के बारे में मतभेद या संदेह की दशा में, संघीय सरकार या लेण्ड गवर्नमैन्ट या बनडेसटैग सदस्यों के तिहाई के अनुरोध पर ;

3. संघ और लाइन्डर के अधिकारों और कर्तव्यों के संबंध में, विशेषकर लाइन्डर द्वारा संघीय विधि का निष्पादन करने और संघीय पर्यवेक्षण करने के बारे में मतभेद या संदेह होने की दशा में।

---

1. गिलबर्ट ब्रिकमैन दि वेस्ट जर्मन कन्स्टीट्यूशनल कोर्ट (स्प्रिंग 1981) पब्लिक ला 83।

2. आगे पैरा 5.10।

3. (पश्चिमी) जर्मनी का संविधान, अनुच्छेद 93।

4. लोक विधि (पब्लिक विधि) के ऐसे अन्य विवादों के बारे में, जो संघ और लाइन्डर के बीच या विभिन्न लाइन्डर या किसी लैण्ड में ही हो, किन्तु तब जब कि किसी दूसरे न्यायालय के समक्ष जाने के लिए उपाय विद्यमान न हों।

4क. असंवैधानिकता के सम्बन्ध में ऐसे परिवादों पर जिनको किसी ऐसे व्यक्ति ने किया है जो यह दावा करता है कि उसकी किसी मूल अधिकार अथवा अनुच्छेद 20 के पैरा (4) के अधीन अथवा अनुच्छेद 33, 38, 101, 103 या 104 के अधीन प्रदत्त किसी अधिकार का अतिक्रमण लोक प्राधिकरण द्वारा किया गया है।

4ख. असंवैधानिकता के संबंध में ऐसे परिवादों पर जिनको कम्यूनों ने या कम्यूनों के संघों ने इस आधार पर किया है कि अनुच्छेद 28 के अधीन प्रदत स्व-शासन के उनके अधिकार का अतिक्रमण लैण्ड विधि से भिन्न किसी ऐसी विधि द्वारा किया गया है जिसके बारे में सम्बद्ध लैण्ड संवैधानिक न्यायालय में परिवाद किया जा सकता है।

5. मूल विधि में उपबन्धित अन्य मामलों में।

(2) संघीय संवैधानिक न्यायालय ऐसे मामलों में भी कार्रवाई करेगा जो उसे संघीय विधान द्वारा अन्यथा सौंपें जाएं।

पश्चिम जर्मनी के संविधान के अनुच्छेद 93, पैरा 4 (उपर्युक्त) को विशेष रूप से रूचिकर उपबन्ध ऐसे विवादों के न्यायनिर्णयन के बारे में है जो संघ और इकाइयों (यूनिटों) के बीच, इकाइयों के बीच या ईकाई के अन्दर होते हैं। [अन्य विवाद जिनमें प्रशासनिक विधि के मुद्दे होते हैं, संघीय प्रशासनिक न्यायालय के समक्ष उठाए जाते हैं।]

5.11 जर्मनी की न्यायिक विचारधारा में "लोक-विधि" के अंतगत ऐस सभी विषय आते हैं जिनका संबंध राज्य या ऐसे प्राधिकरणों से है जिनमें प्रभुत्वसंपन्न शटिम निहित है। सबसे महत्वपूर्ण ये ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें राज्य लोकहित के निमित्त सक्रिय है। लोक विधि के अंतर्गत अन्य बातों के साथ-साथ संवैधानिक विधि, प्रशासनिक विधि, दण्ड विधि, न्यायालय प्रक्रिया के नियम, अंतरराष्ट्रीय विधि, सिविल सेवक संबंधी विधि, पुलिस विनियम, शिक्षा-विधि, सामाजिक विधि, कराधान विधि, और औद्योगिक प्रशासन संबंधी विधि भी है।[1] **लोक विधि की व्याख्या।**

5.12 फेडरल कोर्ट आफ जस्टिस की तरह जर्मन फेडरल कन्स्टीट्यूशनल कोर्ट की बैठकें कार्लस्रुहे में होती हैं[2]। यह न्यायालय स्वतंत्र और स्वशासी है तथा अन्य सवैधानिक अंगों (विधानमण्डल, संघ-राष्ट्रपति तथा संघ-सरकार) से अलग है। संघ के बजट के अंतर्गत इसका अपना बजट है और संघ के किसी विशेष मंत्रालय से इसका कोई संबंध नही है। **मुख्यालय और प्रशासनिक विषय।**

5.13 पश्चिमी जर्मनी के फेडरल कन्स्टीट्यूशनल कोर्ट के न्यायाधीश की आयु कम से कम 40 वर्ष होनी चाहिए। उसे बुनडेस टाग में निर्वाचित होने के पात्र होना चाहिए और न्यायपालिका के लिए साधारण अर्हताएं रखनी चाहिए। सदस्यों में से आधे सदस्य बुनडे ताग द्वारा और आधे सदस्य बुनडेसताग द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं। बुनडसताग पूर्ण अधिवेशन में दो-तिहाई बहुमत से निर्वाचित कराती है। बुनडेसताग पहले एक संविधान समिति गठित करती है जिसमें आनुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति पर बारह डिप्टी होते हैं। तब यह समिति न्यायधीशों का निर्वाचन करती है जिसके लिए भी दो तिहाई बहुमत आवश्यक है। राजनीतिक अंगों द्वारा न्यायाधीशों के निर्वचन को न्यायोचित इसलिए माना जाता है क्योंकि फेडलर कन्स्टीट्यूशनल कोर्ट न केवल एक न्यायालय है बल्कि एक संवैधानिक अंग भी है और क्योंकि उसकी अधिकारिता का विस्तार राजनीतिक क्षेत्र पर भी है। न्यायाधीशों के निर्वाचन में अर्हित-बहुमत प्राप्त करने की आवश्यकता होने से यह सुनिश्चित हो जाता है कि कोई विनिर्दिष्ट राजनीतिक बहुमत फेडरल कन्स्टीट्यूशनल कोर्ट के गठन पर एकतरफा प्रभाव नहीं डालता।[3] **न्यायाधीश।**

---

1. तुलना कीजिए- वोल्फगैंग हेडे, एडमिनिस्ट्रेशन आफ जस्टिस दि फेडरल रिपब्लिक आफ जर्मनी (1971) पृष्ठ 38।
2. वोल्फ गैंग हेडे, दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ जस्टिस इन दि फेडरल रिपब्लिक आफ जर्मनी (1971) पृष्ठ 86-87।
3. वोल्फहेडे, एडमिनिस्ट्रेशन आफ जस्टिस इन फेडरल रिपब्लिक आफ जर्मनी (1971) पृष्ठ 69।

पश्चिमी जर्मनी में पेनेल।

5.14 अभी हाल के ही एक लेख[1] से यह प्रतीत होता है कि न्यायालय में दो पेनेल (सीनेट) है जो एक दूसरे से स्वतंत्र हैं और प्रत्येक पेनेल में अब आठ न्यायाधीश हैं। प्रत्येक पेनेल की तीन न्यायाधीश अन्य वरिष्ठ संघ न्यायालयों (सुपीरियर फेडरल कोर्टस्) अर्थात् संघ उच्च न्यायालय, (फेडरल हाईकोर्ट) संघ प्रशासनिक न्यायालय (फेडरल एडमिनिस्ट्रेटिव कोर्ट) संघ श्रम न्यायालय (फेडरल लेबर कोर्ट) संघ समाज न्यायालय (फेडरल सोशल कोर्ट) और संघ कर न्यायालय (फेडरल टैक्स कोर्ट) में से निर्वाचित किए जाते हैं।

इटली : संवैधानिक न्यायालय की अधिकारिता

5.15 इटली का भी एक संवैधानिक न्यायालय (कंस्टीट्यूशन कोर्ट) है। संवैधानिक न्यायालय की अधिकारिता को इटली के संविधान द्वारा इस प्रकार परिनिश्चित किया गया है[2] :—

"134. संवैधानिक न्यायालय निम्नलिखित विवादों आदि का विनिश्चय संविधान के मानकों के अनुसार करता है:—

केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारों द्वारा बनाई गई विधियों और किए गए ऐसे कार्यों की जो विधि का बल रखते हैं संवैधानिक वैधता से संबंधित विवाद;

राज्यों में, राज्य और प्रदेशों के बीच तथा प्रदेशों के बीच शक्तियों के संवैधानिक समनुदेशन से उत्पन्न होने वाले विवाद;

गणराज्य के राष्ट्रपति और मंत्रियों पर महाभियोग।"

इटली: असंवैधानिकता की घोषणा

5.16 इटली के संविधान में एक रुचिकर उपबंध इस तारीख के बारे में है जिस तारीख से संवैधानिक न्यायालय द्वारा असंवैधानिकता की न्यायिक उद्घोषणा प्रभावी होती है। इस उपबन्ध में यह कहा गया है कि :—

"न्यायालय का विनिश्चय इसलिए प्रकाशित और संसद् तथा हितबद्ध प्रादेशिक परिषदों को संसूचित किया जाता है कि उपबंधों को जहां कहीं आवश्यक समझा जाए वहां संवैधानिक प्ररूप में बनाया जा सके।"

नार्वे

5.17 [3]नार्वे का भी एक संवैधानिक न्यायालय है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी अधिकारिता ऐसी कार्यवाहियों तक ही सीमित है जो उच्च पदों के धारकों को आलिप्त करने के लिए हों। नार्वे के संविधान के तात्विक उपबन्ध नीचे उद्धृत किया जा रहा हैं:—

86 (पहला पैरा)

रेल्म (रिक्सेरेट) का संवैधानिक न्यायालय ऐसी कार्रवाइयों में प्रथम और अन्तिम बार निर्णय सुनाएगा जो ओडलास्टिंग द्वारा कान्सिल आफ स्टेट के सदस्यों या सुप्रीम कोर्ट आफ जस्टिस (हेस्टेरेट) के सदस्यों या स्टारटिंग के सदस्यों के विरूद्ध ऐसे अपराधों के लिए की जाती हैं जिन अपराधों को उन्होंने अपनी उस हैसियत में किया है।

* * * * * *

(तीसरा पैरा)

"लेगटिंग के साधारण सदस्य और सुप्रीम कोर्ट आफ जस्टिस के स्थायी सदस्य रेल्म के कंस्टीच्यूशनल कोर्ट के न्यायाधीश होंगे। धारा 87 में अंतर्विष्ट उपबंध प्रत्येक विशिष्ट मामले में रेल्म के कान्स्टट्यूशनल कोर्ट के संविधान को लागू होंगे। रेल्म के कान्स्टीट्यूशनल कोर्ट में लेगटिंग का प्रेसीडेन्ट अध्यक्षता करता है।"

यूगोस्लाविया : संवैधानिक न्यायालय की अधिकारिता।

5.18 यूगोस्लाविया का संवैधानिक न्यायालय (कान्स्टीट्यूशनल कोर्ट) "विधि की अनुकूलता" के प्रश्न और अंतरराज्यीय विवादों या अधिकारिता के विवादों का विनिश्चय करता है किन्तु इसके अतिरिक्त "उससे यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह" संविधान द्वारा स्थापित स्वशासन के अधिकारों तथा अन्य बुनियादी स्वतंत्रताओं और अधिकारों के बारे में उस दशा में विनिश्चय करे जब कि इसमें स्वतंत्रताओं और अधिकारों का अतिक्रमण संघीय अंगों (फेडरल आर्गन्स) के किसी एक विनिश्चय या कार्रवाई से हुआ है।"[4]

1. गिलबर्ट ब्रिकमैन, वेस्ट जर्मन कान्स्टीच्यूशनल कोर्ट (स्प्रिंग 1981) पब्लिक ला 90।
2. इटली का संविधान, अनुच्छेद 134।
3. नार्वे का संविधान, अनुच्छेद 86, पहला और तीसरा पैरा।
4. यूगोस्लाविया का संविधान अनुच्छेद 24।

5.19 यह बात भी है कि यूगोस्लाविया के संविधान के अनुच्छेद 242 में बहुत ही रोचक उपबंध निम्नलिखित रूप में है:—— फेडरल एसेम्बली को राय दी जाने की शक्ति।

"यूगोस्लाविया का कंस्टीट्यूशनल कोर्ट संवैधानिकता और वैधता को प्राप्ति के लिए प्रकट किए गए विचारों से अपने को अवगत रखेगा और इन आधारों पर फेडरल एसेम्बली को अपनी राय देगा और विधियां पारित करने के लिए तथा संवैधानिकता और वैधता सुनिश्चित करने के उपाय अपनाने के लिए तथा स्वशासन के अधिकारों और नागरिकों तथा संगठनों की अन्य स्वतंत्रताओं और अधिकारों का संरक्षण करने के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत करेगा।"

5.20 यूगोस्लाविया के संविधान का एक दूसरा रोचक उपबन्ध फैडरल असेम्बली पर अधिरोपित कर्तव्य के सबंध में है। अनुच्छेद 245 निम्नलिखित रूप में है।[1]:—— यूगोस्लाविया की फैडरल असेम्बली का विधि को न्यायायिक निर्णय के अनुकूल बनाने का कर्तव्य।

"245. जब कभी यूगोस्लाविया का संवैधानिक न्यायालय (कस्टीट्यूशनल कोर्ट) यह अवधारित करता है कि कोई संघीय विधि संविधान के अनुकूल नहीं है तब फैडरल असेम्बली उस विधि को कंस्टीट्यूशनल कोर्ट के विनिश्चय के प्रकाशन की तारीख से अधिक से अधिक छह मास में संविधान के अनुकूल बनाएगी।

यदि असेम्बली इस अवधि में उस विधि को संविधान के अनुकूल नहीं बनाती है तो वह विधि या उसके वे उपबंध, जो संविधान के अनुकूल नहीं है वैध नहीं होंगे और यूगोस्लाविया का कंस्टीट्यूशनल कोर्ट अपने विनिश्चय से उनको अवैध घोषित कर देगा।"

5.21 यूगोस्लाविया के संविधान में सबसे अधिक रोचक उपबन्ध हस्तक्षेप करने के अधिनियम के बारे में है। अनुच्छेद 249 निम्नलिखित रूप में है[2]:—— यूगोस्लाविया में कन्स्टीट्यूशनल कोर्ट को हस्तक्षेप करने का अधिकार (लोकस स्टैन्डी)।

"249. यूगोस्लाविया के कंस्टीट्यूशनल कोर्ट में संवैधानिकता और वैधता का मुद्दा निम्नलिखित सभाएं आदि उठा सकती हैं:——

(1) संघीय सभा (फेडरल असेम्बली) और गणराज्यीय सभाएं (रिपब्लिकन असेम्बलीज);

(2) संघीय कार्यपालिका परिषद् (फेडरल एग्जक्यूटिव कौंसिल) और गणराज्यीय परिषदें (रिपब्लिकन एक्जक्यूटिव कौंसिल्स, किन्तु तब नहीं जब कि उनकी सभाओं द्वारा पारित विषयों की संवैधानिकता का निर्णय किया जा रहा हो;

(3) यूगोस्लाविया का उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) और संघ के अन्य उच्चतम न्यायालय तथा गणराज्य के उच्चतम न्यायालय (रिपब्लिकन सुप्रीम कोर्ट्स्) उस दशा में जब कि संवैधानिकता और वैद्यता का मुद्दा न्यायालय को कार्यवाहियों में उठा हो;

(4) संघीय लोक अभियोजक (फेडरल पब्लिक प्रोसीक्यूटर) उस दशा में जब कि संवैधानिकता और वैधता का मुद्दा लोक अभियोजन के कार्य में उठा हो;

(5) गणराज्यीय संवैधानिक न्यायालय (रिपब्लिक कंस्टीटयूशनल कोर्टस)

(6) सामाजिक राजनीतिक समुदाय की सभा अथवा कार्यकारी या अन्य स्वायत्तशासी संगठन उस दशा में जब कि यूगोस्लाविया के संविधान द्वारा प्रतिष्ठापित उनके अधिकारों का अतिक्रमण किया गया हो:

यूगोस्लाविया का संवैधानिक न्यायालय (कंस्टीट्यूशनल कोर्ट) संवैधानिकता और वैद्यता का मुद्दा स्वप्रेरणा से उठा सकता है।

1. यूगोस्लाविया का संविधान, अनुच्छेद 245।

2. यूगोस्लाविया का संविधान, अनुच्छेद 249।

"राज्य के अन्य अंग, संगठन और नागरिक यूगोस्लाविया के कंस्टीट्यूशनल कोर्ट के समक्ष जिन परिस्थितियों में संवैधानिकता और वैधता का मुद्दा उठा सकते हैं उनका अवधारण संघीय विधि द्वारा किया जाएगा।"

अमरीका में अभिव्यक्त दृष्टिकोण।

5.22 अमरीका में भी विशेषज्ञता की दृष्टि से शीर्ष न्यायालय (एपैक्स कोर्ट) में खंडों या पेनलों का बनाया जाना उन उपायों में से एक है जिन पर विचार-विमर्श किया गया है।[1]

संवैधानिक न्यायालयों के सम्बन्ध में उपबन्धों का महत्व

5.23 इसमें कोई संदेह नहीं कि यूरोप के संवैधानिक न्यायालयों के सम्बन्ध में ऊपर जिन उपबन्धों का सारांश दिया गया है वे परस्पर विरोधी प्रकट होते हैं। किन्तु गंभीर चिंतन करने पर उनमें एक समान्य आधार तत्व पाया जाएगा। वे सभी इस आधार-तत्व पर निर्भर हैं कि संवैधानिक न्यायनिर्णयन का अपना एक वर्ग है और उन्हें समुचित रूप से एक अलग हैसियत दी जा सकती है। यह आवश्यक नहीं है कि ऐसे न्यायनिर्णयनों में वही पद्धति अपनायी जाए जो साधारण मुकदमों में अपनायी जाती है बल्कि यह वैध रूप से माना जा सकता है कि वे अपना अलग-स्थान बनाते हैं और इसके परिणामस्वरूप ऐसे न्यायनिर्णयनों के लिए ऐसे उपबन्ध बनाना समुचित होगा जो अन्यथा साधारण मुकदमों के लिए नहीं बनाए जाते। यही उनकी विशेष प्रकृति की मान्यता है।

---

1. पिछला पैरा 3.7।

अध्याय 6

सिफारिशें

पहला विवाद्यक: उच्चतम न्यायालय के विशेष खंड के सृजन की आवश्यकता।

6.1 पूर्ववर्ती अध्यायों में जिन विषयों पर विचार विमर्श किया गया है उनसे हम ऐसे मुख्य विवाद्यक निश्चित करने में समर्थ होते हैं जिन पर विचार करने और उनके बारे में सिफारिशें करने की आवश्यकता है।

निस्संदेह पहला विवाद्यक यह है कि क्या उच्चतम न्यायालय में संवैधानिक खण्ड सृजित करने की आवश्यकता है? संवैधानिक न्यायनिर्णयन की प्रकृति और भारतीय संदर्भ में उनके महत्व पर विचार करने से हमें यह प्रतीत होता है कि यदि संवैधानिक न्यायनिर्णयन में किसी निश्चित स्तर की गुणवत्ता (क्वालिटी) संगति और सामंजस्य बनाए रखना है तो ऐसे खण्ड का सृजन अभीष्ट है। हमने पूर्ववर्ती अध्याय में ऐसे न्याय-निर्णयन की चर्चा विस्तार से की है[1] और हमें उस अध्याय में कही गई बातों को दुहराना आवश्यक नहीं है। उस अध्याय में बताए गए कारणों को सम्यक् महत्व देने पर देश के सर्वोच्च न्यायालय में संवैधानिक न्याय-निर्णयन के लिए विशेषज्ञीय प्रकृति का एक तंत्र (मशीनरी) सृजित करना वांछनीय प्रतीत होता है और इसी के लिए संवैधानिक खण्ड की परिकल्पना की गई है।

हम इस बात का उल्लेख कर दें कि विख्यात संवैधानिक विधि शास्त्री डा. एडवर्ड म हूवीनी ने हमें अपने विचारों से लाभान्वित करने की कृपा की है[2] और हमारी प्रश्नावली के प्रश्न 1 (क) के बारे में अपना विचार निम्नलिखित रूप में प्रकट किया है:—

> "1945 से लोकतंत्रात्मक संवैधानवाद की दो प्रमुख प्रवृत्तियां तुलनात्मक संवैधानिक विधि के अनुभव से पर्याप्त रूप में प्रकट होती हैं। ये दो प्रवृत्तियां हैं–संवैधानिकता के न्यायिक आधार पर नियंत्रण को संस्था का रूप देना जो रोक लगाने और संतुलन बनाए रखने के लिए साधारण संवैधानिक पद्धति के भाग के रूप में हो और संवैधानिकता के उस न्यायिक नियंत्रण/न्यायिक पुनर्विलोकन का क्रियान्वयन जो ऐसे विशेषता प्राप्त संवैधानिक अधिकरण के सृजन से हो जिसे संवैधानिक विधि के विवाद्यकों का प्राथमिक और अपीलीय पुनर्विलोकन करने की अधिकारिता प्राप्त है। किन्तु इस प्रश्न का उत्तर कि विशेष संवैधानिक न्यायालय सृजित करने का विकल्प अपनाना चाहिए या नहीं, निरपेक्ष रूप में नहीं दिया जा सकता क्योंकि यह एक राजनीतिक विधिक विनिश्चय है जो विशिष्ट ऐतिहासिक संदर्भ में और विधिक-पद्धति में विधि से होने वाले कष्ट और लाभों, उनके खर्च और फायदों का विश्लेषण करके पसंद किया जाना चाहिए। ऐसी राष्ट्रीय विधिक पद्धति की दशा में, जो पहले से ही एक चालू समुत्थान के रूप में और पूर्ण रूप से प्रवर्तित है, विशेष संवैधानिक न्यायालय की खोज करने के लिए आवश्यकता से अधिक राजनीतिक तथा विधिक शक्ति व्यय करनी पड़ेगी और इसकी बजाए विद्यमान न्यायालय पद्धति में अभिवृद्धिकारी परिवर्तन करके और संवैधानिक पुनर्विलोकन करने की उसकी क्षमता तथा सामर्थ्य को बढ़ा करके ही कम फायदा उठाना बेहतर हो सकता है।"

किसी नई संस्था को बनाया जाना आवश्यक नहीं।

6.2 हम पहले ही अपना यह विचार[3] बता चुके हैं कि संवैधानिक परिषद् की फ्रांसीसी पद्धति भारतीय परिस्थितियों में साध्य नहीं है और कोई अन्य नई संस्था बनाने की आवश्यकता भी नहीं है। आवश्यकता केवल यह है कि विद्यमान संस्था में उपयुक्त रूपान्तरण करके उसका उपयोग किया जाए।

उच्चतम न्यायालय में दो खण्डों के लिए सिफारिश।

6.3 तदनुसार हमारी यह सिफारिश है कि भारत के उच्चतम न्यायालय में दो खण्ड होने चाहिएं, अर्थात् :—

(क) संवैधानिक खण्ड, और

(ख) विधिक खंड।

---

1. पिछला अध्याय 3।
2. पिछला पैरा 1.7।
3. पिछला पैरा 2.6।

हम ऊपर (ख) के रूप में "विधिक खंड" के नाम का सुझाव उस खंड के एक सुविधाजनक नामकरण के लिए दे रहे हैं जिसका सरोकार सभी असंवैधानिक मामलों से रहेगा। यदि कोई न्य या अधिक समुचित नाम ढूंडा जा सकता है तो उस पर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

दूसरा विवाद्यक प्रस्तावित खण्ड की अधिकारिता। सिफारिश।

6.4 यदि प्रस्तावित संवैधानिक खण्ड सृजित किया जाना है तो इस समय उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता के अंतर्गत के कामकाज के लिए जिस रूप में उपबंध किया गया है उस रूप में उस कामकाज का कुछ भाग इस संवैधानिक खण्ड को सौंपना पड़ेगा। विचारणीय दूसरा विवाद्यक यह है कि उक्त खण्ड को कौन से मामले सौंपे जाने चाहिए? इस संबंध में दो मुख्य विकल्प हैं जिन पर निम्नलिखित (क) और (ख) के अनुसार विचार किया जाना है :—

(क) इस खंड को उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता के अंतर्गत सभी लोक विधि के मामलों के न्यायनिर्णयन का कार्य सौंपा जाए। यदि यह विकल्प स्वीकार किया जाता है तो इस खंड की अधिकारिता के अंतर्गत

(i) ऐसा प्रत्येक मामला आता है जिसमें संविधान के निर्वचन के सम्बन्ध[1] में सारभूत विधि प्रश्न या संविधान के अधीन जारी किया गया कोई आदेश या नियम अन्तर्ग्रस्त है;

(ii) ऐसे प्रत्येक मामले जिनमें संवैधानिक विधि का कोई ऐसा प्रश्न है जो ऊपर की मद (1) के अंतर्गत नहीं आता है[2];

(iii) ऐसी प्रत्येक अपील जो उच्च न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन दिए गए विनिश्चय के विरुद्ध है;

(iv) ऐसी प्रत्येक अपील जो संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध है (चाहे ऐसा अधिकरण संविधान के अनुच्छेद 323क या अनुच्छेद 323ख के आधार पर पारित विधि द्वारा या अन्यथा सृजित किया गया है)।

(ख) दूसरे विकल्प में केवल संवैधानिक विधि के मामले प्रस्तावित संवैधानिक खण्ड को सौंपे जा सकते हैं। यदि यह विकल्प स्वीकार किया जाता है तो इसकी अधिकारिता में केवल वही मदें आएंगी जो ऊपर (क) में वर्णित मद (1) और (2) हैं। तब अधिकारिता के अंतर्गत निम्नलिखित मामले आएंगे :—

(i) ऐसा प्रत्येक मामला जिसमें संविधान निर्वचन के संबंध में सारभूत विधि-प्रश्न[2] या संविधान के अधीन जारी किया गया कोई आदेश या नियम अंतर्ग्रस्त है; और

(ii) ऐसा प्रत्येक मामला जिसमें संवैधानिक विधि का कोई ऐसा प्रश्न है जो ऊपर की मद (i) के अंतर्गत नहीं आता है।

हम उपर्युक्त विकल्प (ख) को ज्यादा पसन्द करते हैं। शुद्ध संवैधानिक विधि तक सीमित मामलों को ठीक-ठीक परिनिश्चित करना और उनके बारे में पता लगाना आसान होता है। हम यह मानते हैं कि संवैधानिक और प्रशासनिक विधि के प्रश्न प्रायः एक दूसरे से मेल खाते हैं; विशेषकर संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन कार्यवाहियों में (जो अपील में उच्चतम न्यायालय के समक्ष की जाती हैं) किन्तु हमारी राय में प्रस्तावित खण्ड की अधिकारिता को कम से कम वर्तमान समय के लिए सीमित और संहत रखना वांछनीय होगा।

तदनुसार हम यह सिफारिश करते हैं कि उच्चतम न्यायालय के संवैधानिक खंड को उपर्युक्त विकल्प (ख) में वर्णित प्रकृति के मामले सौंपे जाने चाहिएं। इसके परिणामस्वरूप उच्चतम न्यायालय के प्रस्तुत किए जाने वाले अन्य मामले उसके विधिक खण्ड को सौंपे जाएंगे।

संवैधानिक विवाद्यक अंतर्ग्रस्त होने के बारे में अवधारित करने की कसौटी।

6.5 निस्संदेह दो खण्डों का सृजन सिद्धांत रूप में स्वीकार कर लेने से समस्या समाप्त नहीं हो जाती। प्रस्तावित स्कीम को व्यावहारिक रूप से क्रियान्वित करने के लिए दो प्रत्यक्ष समस्याओं की चर्चा करना आवश्यक होगा, अर्थात् (i) कब यह कहा जा सकता है कि संवैधानिक विवाद्यक "अंतर्ग्रस्त" है? और (ii) दोनों खण्डों को मामले आबंटित करने के लिए कौन सा तंत्र (मशीनरी) होगा?

---

1. संविधान के अनुच्छेद 132 से तुलना कीजिए।

2. मद (ii) की आवश्यकता कुछ विधियों को सम्मिलित करने के लिए होगी उदाहरण के लिए, संविधान की अनुपूर्ति करने वाली अधिनियमितियां।

(ii) इसकी विपरीत दशा में इसी प्रक्रिया का पालन किया जा सकता है जब कि कोई मामला विधि खंड को आबंटित किया गया हो और विधिक खंड का यह विचार हो कि उस मामले की सुनवाई संवैधानिक खंड द्वारा की जानी चाहिए ।

ये सुझाव प्रस्तुत किए जा रहे हैं कि जब कभी उच्चतम न्यायालय में संवैधानिक खण्ड और किसी अन्य खंड के बीच इस बात के बारे में संदेह हो कि किस खंड को किसी खास मामले पर विचार करना चाहिए तब उस मामले को भारत के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष उनके अंतिम विनिश्चय के लिए प्रस्तुत करना होगा ।

निपटारे की वैधता के बारे में प्रश्न नहीं उठाया जाना ।

6.8 हम यह भी आवश्यक समझते हैं कि समुचित स्थान पर एक ऐसा उपबन्ध भी अंतःस्थापित किया जाना चाहिए जिसमें समुचित विधायी भाषा का प्रयोग करके वास्तव में यह सुनिश्चित किया जाएगा[1] कि उच्चतम न्यायालय के संवैधानिक खंड को जो मामला सौंपा गया है उसका उस खंड द्वारा किए गए निपटारे की वैधता के बारे में कोई प्रश्न निम्नलिखित आधार पर नहीं उठाया जाएगा :--

(क) संवैधानिक खंड द्वारा निपटाए गए मामले में संवैधानिक विधि का प्रश्न अंतर्ग्रस्त नहीं था, या

(ख) विधि खंड द्वारा निपटाए गए मामले में संवैधानिक विधि का प्रश्न अंतर्ग्रस्त था ।

ऐसी परिस्थितियां बहुत ही कम होंगी विशेषकर तब जब कि हमारे द्वारा सुझाई गई यह प्रक्रिया अपनाई जाए[2] । फिर भी संभाव्य चुनौतियों से बचने के लिए ऐसा उपबंध करना समुचित है ।

तीसरा विवाचक : संवैधानिक खण्ड का गठन ।

6.9 तीसरा विवाचक प्रस्तावित संवैधानिक खंड के गठन के सम्बन्ध में है । इसके बारे में हमारी निम्नलिखित सिफारिशें हैं :---

(क) नीचे (ख) में कही गई बातों के अधीन रहते हुए, संवैधानिक खंड में कम से कम सात न्यायाधीश होने चाहिए ;

(ख) ऐसे मामलों में, जिनके लिए सात से अधिक न्यायाधीश अपेक्षित हों, या इसके समान परिस्थितियों में उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को यह शक्ति होनी चाहिए कि वह न्यायाधीशों को अन्य खंड से इस खण्ड में अस्थायी रूप से समनुदेशित कर सके ;

(ग) संवैधानिक खण्ड के और उसमें कार्यरत न्यायाधीशों को ऐसे सभी मामलों की, जो उस खण्ड को सौंपे गए हैं, सुनवाई करने के लिए न्यायपीठ पर एक साथ बैठना चाहिए ।

चौथा विवाचक : न्यायाधीशों की अर्हता ।

6.10 चौथा विवाचक संवैधानिक खंड में नियुक्त किए जाने वाले न्यायाधीशों के लिए अपेक्षित अर्हता के सम्बन्ध में है । हम यह परिकल्पना करते हैं कि नियुक्त किए जाने वाले न्यायाधीशों को संविधान के अनुच्छेद 124(3) में अधिकथित अर्हताएं रखने के अलावा संवैधानिक विधि का विशेष ज्ञान या अनुभव भी होना चाहिए । किन्तु हम यह सिफारिश नहीं कर रहे हैं कि संविधान (या सम्बद्ध विधान) में इस प्रकार का कोई उपबन्ध अंतःस्थापित किया जाए । यह आशा की जाती है कि संवैधानिक खंड में न्यायाधीश को नियुक्त करते समय उपर्युक्त बात को ध्यान में रखा जाएगा ।

पांचवां विवाचक : प्रत्येक खंड में न्यायाधीशों की तैनाती ।

6.11 पांचवां विवाचक प्रत्येक खण्ड में न्यायाधीशों की तैनाती के संबंध में है । इस संबंध में दो विकल्प हैं जैसा कि वे नीचे (क) और (ख) में वर्णित हैं :---

(क) एक न्यायाधीश को उसकी नियुक्ति की तारीख से ही उसकी संपूर्ण न्यायिक पदावधि के लिए किसी विशिष्ट खण्ड में नियुक्त किया जा सकता है (ऐसे समायोजनों के अधीन रहते हुए जो अस्थायी परिस्थितियों का सामना करने के लिए अस्थायी अवधि के लिए आवश्यक हों) ।

(ख) इसके विकल्प में, उसकी नियुक्ति केवल न्यायालय में, न कि किसी विशिष्ट खण्ड में, हो सकती है और उसे एक खण्ड से दूसरे खण्ड में अंतरित किया जा सकता है ।

हम पहले विकल्प को अधिक पसन्द करते हैं । हमारे विचार में भावी न्यायाधीशों की नियुक्ति किसी विशिष्ट खंड में प्रारंभ से ही की जानी चाहिए किन्तु निस्संदेह अस्थायी समायोजन किया जाना संभव है

1. यह अनुध्यात उपबंध का प्रारूप नहीं है ।

2. पिछला पैरा 6.7 ।

जैसी कि पहले ही सिफारिश की गई है[1] । उच्चतम न्यायालय में नियुक्ति के लिए जो प्रक्रिया संविधान में उपबंधित है वह उपर्युक्त के अधीन रहते हुए निस्संदेह लागू होती रहेगी ।

6.12 छठवां विवाद्यक मुख्य न्यायमूर्ति के संबंध में है । मुख्य न्यायमूर्ति को उच्चतम न्यायालय में उसकी प्रारंभिक नियुक्ति के समय चाहे जिस किसी खण्ड में समनुदिष्ट किया गया हो उसे उच्चतम न्यायालय के दोनों खण्डों में से किसी भी खण्ड में बैठने का हकदार होना चाहिए । मुख्य न्यायमूर्ति को किसी भी खंड में बैठने का हक होना।

6.13 यह स्पष्ट है कि कई मामलों के बारे में उपर्युक्त मूल उपबंधों के अतिरिक्त संक्रमणकालीन उपबन्ध भी आवश्यक होंगे जिनके अंतर्गत विशेष रूप से निम्नलिखित उपबन्ध होंगे (किन्तु इनसे यह तात्पर्य नहीं निकालना है कि समस्त उपबन्ध इतने ही हैं)— संक्रमण कालीन उपबन्ध।

(क) नई स्कीम लागू होने के समय जो न्यायाधीश पहले से ही पदासीन हैं उनकी प्रत्येक खण्ड में तैनाती; और

(ख) लम्बित मामलों के बारे में व्यावृत्ति (सेविंग) या अन्य उपबन्ध ।

6.14 हमने इस अध्याय में जो सिफारिशें की हैं वे ऐसी कुछ सिफारिशों के अधीन रहते हुए और उनके साथ पढ़ी जानी हैं जो हमने एक पूर्वोत्तर अध्याय में संवैधानिक संशोधन और परिणामी उपबन्धों की आवश्यकता पर विचार विमर्श करते समय की हैं[2] । संविधान का संशोधन और परिणामी उपबन्ध।

के. के. मैथ्यू,

अध्यक्ष

जे. पी. चतुर्वेदी,

सदस्य

डा. एम. बी. राव,

सदस्य

पी. एम. बक्शी,

अंशकालिक सदस्य

वेपा पी. सारथी,

अंशकालिक सदस्य

ए. के. श्रीनिवासमूर्ति,

सदस्य-सचिव

तारीख 1-3-1984

---

1. पिछला पैरा 6.9।
2. पिछले पैरे 4.4 से 4.7 तक।

परिशिष्ट

भारतीय विधि आयोग

प्रश्नावली

प्रत्येक प्रश्न के नीचे आने वाले पृष्ठभूमि टिप्पण, आयोग के विचार नहीं हैं और इन्हें इस कारण संलग्न किया गया है जिससे कि विवाद्यक को उठाया जा सके और विचार विमर्श को प्रोत्साहित किया जा सके। उत्तर, 1 जून, 1983 तक वी. वी. वजे, सदस्य सचिव, भारतीय विधि आयोग, 730-"ए" खंड शास्त्रीभवन, नई दिल्ली-110001 को भेजे जाएं।

1. (क) क्या उच्चतम न्यायालय के स्थान पर एक संवैधानिक न्यायालय स्थापित किया जाए जिसके पास केवल संवैधानिक विषयों से संबंधित कार्य हो?

(ख) क्या ऐसा न्यायालय हमेशा सामूहिक रूप में आसीन हो (अर्थात् विद्यमान पद्धति के विरुद्ध जिसमें न्यायपीठ के रूप में आसीन होता है) ?

(ग) उस न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए अर्हताएं और मानदंड क्या होने चाहिए ?

1951 में पश्चिम जर्मनी में एक ऐसा संघीय न्यायालय स्थापित किया गया था जिसे कानून को असंवैधानिक घोषित करने और ऐसे राजनैतिक दल को विधिक सुविधाओं से वंचित करने की शक्ति है जो स्वतंत्र प्रजातांत्रिक आधार व्यवस्था में ह्रास करने या समाप्त करने की कोशिश करते हैं या जो जर्मनी अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न करते हैं। न्यायालय में आठ न्यायाधीश, दो पैनलों में हैं जिनमें से छह दो तिहाई बहुमत द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं। न्यायालय की इस आधार पर आलोचना की गई है कि वह तत्कालीन सरकार का अनुसेवी होता है और यदि किसी दल को दो तिहाई बहुमत नहीं मिलता तो चयन प्रक्रिया, राजनैतिक दलों के बीच मोल तोल का विषय बनकर रह जाती है। "यदि आप हमारे एस पी डी अभ्यर्थी को स्वीकार कर लेते हैं तो हम आपके सी डी यू अभ्यर्थी को स्वीकार कर लेंगे।" (पश्चिमी जर्मनी संघीय संवैधानिक न्यायालय न्यायाधीशों के माध्यम से नियंत्रण, गिसबर्ट ब्रिकमैन (1981) पब्लिक ला 83, पृष्ठ 84)। यह आलोचना कि उच्चतम न्यायालय का एक न्यायाधीश, अपने कुछ साथियों को अपने विचारों से प्रभावित कर सकता है और यह कि किसी मामले में निर्णय न्यायपीठ के गठन पर निर्भर करता है, कुछ हद तक मिश्रित हो जाएगा यदि न्यायालय इस मामले या प्रत्येक मामले में सामूहिक रूप से आसीन हो संयुक्त राज्य अमेरिका में भी ख्याति प्राप्त अधिवक्ता भी, न्यायालय के कार्मिक में परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए प्रथम संशोधन की सीमा का पूर्वानुमान नहीं लगा सकते। (तारीख 23-12-1981) के हिन्दुस्तान टाइम्स के पृष्ठ 12 पर फ्लायड एब्राहम का उद्धरण)।

2. क्या आप विधि के विवादों (संवैधानिक विधि से भिन्न) के अंतिम निर्णायक के रूप में अपील न्यायालय की स्थापना के और संवैधानिक मामलों को उच्चतम न्यायालय के लिए छोड़ने के पक्ष में हैं ?

ये विचार प्रकट किए गए हैं कि विधि के प्रश्न (संवैधानिक विधि से भिन्न) और तथ्य के प्रश्न एक मध्यवर्ती अपील न्यायालय में समाप्त हो जाने चाहिए जिससे कि उच्चतम न्यायालय, इस उप-महाद्वीप की विविध जनता के विभिन्न वर्गों पर प्रभाव डालने वाले संवैधानिक विधि के विवाद्यक पर अपना ध्यान निरंतर दे सके।

3. क्या उच्चतम न्यायालय को उतना ही काम हाथ में लेना चाहिए जितना वह तीन मास के भीतर निपटा सकता है ?

संयुक्त राज्य अमेरिका का उच्चतम न्यायालय प्रतिवर्ष लगभग 5,000 मामले प्राप्त करता है और उनमें से केवल दो सौ का ही चयन करता है जो सुनवाई के लिए उपयुक्त होते हैं। किसी मामले की सुनवाई के लिए 9 न्यायाधीशों में से कम से कम 4 को सुनवाई करने के पक्ष में मतदान करना चाहिए। इंगलैंड

में 1970 से 1979 की अवधि में हाउस आफ लार्ड्स द्वारा प्रतिवर्ष सुनवाई की गई अपीलों की औसत संख्या केवल 33 रही हैं जिससे कि न्यायाधीश सार्वजनिक महत्व के मामलों पर अधिक समय दे सकें।

4. क्या आप यह महसूस करते हैं कि उच्चतम न्यायालय तीसरे सदन के रूप में काम कर रहा है?

न्यायपालिका दो वर्गों में विभाजित प्रतीत होती है : ऐसे व्यक्ति जो यह विश्वास करते हैं कि यदि कानून इतना स्पष्ट नहीं है कि वह स्वयं क्रियाशील हो तो न्यायाधीशों को अनुपूरक सिद्धांतों का विकास करके उपबंधों को अवश्य विकास सक्षम बनाना चाहिए चाहे उसमें कानून बनाने की झलक क्यों न मिलती हो। (राजेंद्रप्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ए. आई. आर. 1979 एस.सी. 916,924)। दृढ़ अर्थान्वियन की विचार धारा वाले व्यक्तियों का अन्य वर्ग कानून बनाने की ऐसी शर्तों का अध्ययन करने की छूट नहीं देता जो अर्थान्वियन की प्रक्रिया से पायी नहीं जा सकती। [गुरुबख्श सिंह सिब्बा बनाम पंजाब राज्य (1980) 2 एस.सी.सी. 565]। पश्चात्वर्ती विचारधारा वाले व्यक्ति न्यायपालिका द्वारा कानून बनाने के सिद्धांत से घृणा करते हैं चाहे किसी विशेष मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उसका यह समाधान हो गया हो कि विद्यमान विधि में तुरन्त पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है। (टेक्नोइंपैक्स गैबर वैन विल्डे, (1981) 2 डब्लू. एल. आर. 821, पृष्ठ सं. 842)। कुछ विधिक लेखक यह अनुभव करते हैं कि न्यायालय, समाज और अर्थशास्त्र के विषय में, अधिकत्तर बिना किसी साक्ष्य, कर्मचारियों के अन्वेषण, विधि प्रर्वतन विशेषज्ञों, उद्योग की राय और साधारणतया विधायन कार्य के लिए अपेक्षित औजारों के बिना ही चिंतन करता है और पूर्ण होने का दावा करता है।

5. क्या जमींदारी अधिकारों को समाप्त करने पर सदैव प्रतिकर के संबंध में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के कारण सामाजिक सुधार का कार्य शून्य हो गया है?

उच्चतम न्यायालय के एक न्यायाधीश ने यह विचार व्यक्त किया कि जमींदारी प्रथा से संबंधित विधायन न्यायपालिका के हाथों ही परास्त हुआ और स्वतंत्रता के फायदे उसके स्वामियों को नहीं मिल पाए हैं। न्यूजीलैंड में भी ये विचार व्यक्त किए जा रहे हैं कि आर बनाम राज्य (1979) 2 आल ई. आर. 1922 वाले मामले में हाउस आफ लार्ड्स के फैसले की, जो इस आधार पर साक्ष्य को अपवर्जित करने से संबंधित था कि वह अवैध रूप से या अनुचित रूप से प्राप्त किया गया था, इस कारण आलोचना की गई है कि न्यूजीलेंड में विद्यमान सामाजिक परिस्थितियों पर आधारित नहीं है। सं. रा. उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति ब्लैक ने न्यायालयों द्वारा संप्रदाय प्रथा चलाने और संकाय सदस्यों के जातीय सापेक्ष सामंजस्य के विषय में विनिश्चय करने जैसे कार्य का भार लेने के पक्ष में नहीं थे। न्यायमूर्ति स्टुआर्ट का भी यह विचार था कि न्यायालयों को नए अधिकार सृजित करने का कार्य नहीं करना चाहिए। न्यायमूर्ति ब्लैक ने अपने सहकर्मियों पर पेशेवर अपराधियों को बिना जोखिम के समाज पर अत्याचार करने की स्वतंत्रता देने का आरोप लगाया और अब एक सिद्धांत विकसित हो रहा है कि न्यायालय का कार्य, राज्य के ऊपर अपने विचार थोपने का नहीं है क्योंकि वह उत्तरदायी नहीं है और यह तत्कालीन समाज के अंतःकरण की आवाज नहीं है।

6. क्या न्यायालय उन मामलों में अधिकारिता पर अपनी पकड़ बना रहा है जो सरकार की कार्यपालिका शाखा की शक्ति के अन्तर्गत आता है?

एक कांग्रेस सदस्या एलिजाबैथ होल्जमैन के अनुरोध पर न्यूयार्क के जिला न्यायालय ने कंबोडिया पर बमबारी को रोकने के लिए जुलाई, 1973 में व्यादेश जारी किया था किन्तु यह व्यादेश तुरन्त रद्द कर दिया गया जिससे कि बमबारी के एक भी कार्यक्रम में गड़बड़ नहीं हुई (द ब्रदरेन इन साइड सुप्रीम कोर्ट-बाब वुडवार्ड और स्टाक आर्मस्ट्रांग—जो 'ब्रदरेन' के लिए आता है—देखें पृष्ठ 277–278)। यह भी विचार व्यक्त किया गया है कि यदि उच्चतम न्यायालय ने धारक बांड स्कीम की चुनौती को स्वीकार नहीं किया होता तो सरकार ने 1,000 करोड़ रुपए का साधन इकट्ठा कर लिया होता। न्यूजीलेंड में राष्ट्रीय विकास अधिनियम, 1979 जैसे तीव्र गति विधायन राष्ट्रीय महत्व के कार्यों के प्रति न्यायिक चुनौती को सीमित करता है। उच्चतम न्यायालय के उस निर्णय पर जिसमें, नगर में अप्राधिकृत निवासियों से पटरियों को खाली कराने की महाराष्ट्र सरकार की कोशिश को अवरुद्ध कर दिया गया, एक भूतपूर्व न्यायाधीश ने यह टिप्पणी की किस विधि के अधीन एक अतिचारी को वैकल्पिक आवास का हक प्राप्त है। न्यायाधीश उस दशा में क्या करेंगे जब अतिचारी न्यायालय के मैदानों में या उनके घरों में झोपड़ियाँ बना लेते हैं?

7. क्या उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर नियुक्त होने वाले व्यक्ति की एक राजनैतिक पृष्ठभूमि होनी चाहिए ?

अर्ल वारेन एक भूतपूर्व दुःसाहसिक अभिशंसक थे, कैलीफोर्निया के तीन बार राज्यपाल और रिपब्लिकन पार्टी की ओर से उपराष्ट्रपति पद के नामनिर्देशिती थे, इसका परिणाम यह हुआ कि जब वह संयुक्त राज्य अमेरिका के उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश बने तो कुछ व्यक्तियों ने यह अनुभव किया कि देश पर उनका प्रभाव कुछ राष्ट्रपतियों से भी बढ़कर था। इटली में सन् 1955 में जो संवैधानिक न्यायालय अस्तित्व में आया उसमें 15 सदस्य हैं जिनमें से एक-तिहाई राज्य के अध्यक्ष द्वारा 12 वर्ष की पदावधि के लिए नामनिर्देशित किए जाते हैं, एक-तिहाई विधान मंडल द्वारा और एक-तिहाई न्यायपालिका द्वारा नामनिर्देशित किए जाते हैं।

8. क्या यह आलोचना कि भारत में, साधारण परिवार के व्यक्ति या निर्धन व्यक्ति की उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किए जाने की संभावना नहीं है, न्यायोचित है ?

इंग्लैंड की न्यायपालिका की इस आधार पर आलोचना की जाती है कि यह आधुनिक सामाजिक विचारधारा की सहानुभूति से सर्वथा अछूता है और यह कार्य की दशाओं, जनसाधारण की विचारधारा और आकांक्षाओं को समझने में असफल रहा है। इंग्लैंड के उच्च न्यायालय और अपील न्यायालय के न्यायाधीशों ने पब्लिक स्कूल की शिक्षा प्राप्त की है और उसके बाद विधि का अध्ययन आक्सफोर्ड तथा कैंब्रिज विश्वविद्यालयों में करने पर अधिवक्ता के रूप में स्वीकार किए जाते हैं। [के. इड्डी का इंगलिश लीगल सिस्टम, दूसरा, सं. 177] भारत में मुख्य न्यायाधीशों की इस बात के लिए आलोचना की जाती है कि वे किसी विशेष जाति या समूह के विधि व्यवसायी की ही न्यायाधीश पद के लिए सिफारिश करते हैं।

9. क्या यह कहना सही होगा कि उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को अब उतनी इज्जत नहीं मिलती जितनी उन्हें पहले मिला करती थी और यह केवल इस कारण कि उनके वेतन ख्यातिप्राप्त अधिवक्ताओं से भी कम हैं ?

समय-समय पर एक के बाद एक आने वाले विधि मंत्रियों ने इस बात पर शोकाकुल होकर खेद प्रकट किया है कि ख्यातिप्राप्त अधिवक्ता, अल्प वित्तीय फायदों के कारण न्यायाधीश के पद स्वीकार नहीं करते। संयुक्त राज्य अमेरिका में भी उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन, ख्यातिप्राप्त अधिवक्ताओं से बहुत कम हैं और न्यायमूर्ति फोरटेस को अपनी परिलब्धियों में 90 प्रतिशत की हानि उठानी पड़ी जब वे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त किए गए। [द ब्रदरेन, पृष्ठ 20] संयुक्त राज्य अमेरिका का मुख्य न्यायाधीश 92,400 डालर प्रतिवर्ष प्राप्त करता है जब कि उसके सहयोगी न्यायाधीश को 88,700 डालर मिलते हैं। किसी वक्त राज्यों के उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, संयुक्त राज्य अमेरिका के मुख्य न्यायाधीश से, अधिक वेतन प्राप्त करते थे। विधि विद्यालयों से शिक्षा प्राप्त कर निकलने वाले कुछ मेधावी नौजवान 10,000 डालर प्रतिवर्ष पर नौकरी शुरू कर रहे थे जब कि 49–51 वर्ष की आयु के बीच आने वाले विधिक फर्म के भागीदार 90वां परसेनटाइल के आधार पर 194,600 डालर अर्जित कर रहे थे। उन संघीय न्यायाधीशों में से जो 57,500 डालर वेतन प्राप्त करते थे, 7 न्यायाधीशों ने 1950 से 1959 के बीच पद त्याग दिया जब कि पिछले दशक में पद त्याग करने वालों की संख्या बढ़कर 24 हो गई है। अत्यल्प आर्थिक प्रतिकर के कारण संघीय न्यायाधीशों में से 56 न्यायाधीश अभी भी पूरे समय कार्य कर रहे हैं जब कि वे 1 जून, 1960 में ही सेवानिवृत्ति के हकदार हो गए थे।

10. क्या न्यायालय में होने वाले अधिकांश विलम्ब का कारण वे अधिवक्ता हैं जो तुच्छ कारणों से स्थगन चाहते हैं ?

उच्चतम न्यायालय के एक न्यायाधीश ने यह अनुभव किया है कि कुछ अधिवक्ताओं के संगम व्यापार संघ की तरह आचरण करते हैं और स्थगन की अस्वीकृति का, कांसल से विरोध करते हैं जिसके कारण अनावश्यक विलम्ब होता है। एक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश ने भी एक ख्यातिप्राप्त अधिवक्ता द्वारा मांगी गई सुविधा की बात बताई जिसके कारण न्यायालय के कलैंडर में गड़बड़ होती थी।

11. क्या उच्चतम न्यायालय को दांडिक मामलों में अपनी प्रक्रिया का विकास करना चाहिए ?

हत्या के मामले में अभियुक्त को न्यायालय प्रश्न करने में उच्चतम न्यायालय द्वारा अपनाई जाने वाली असामान्य प्रक्रिया पर अपने विचार व्यक्त करते हुए एक स्थानीय पत्र ने कहा कि किसी न्यायालय या

अधिकरण को किसी मामले की परिस्थितियों के विषय में अपनी राय के अनुसार प्रत्येक मामले में अपनी प्रक्रिया का विकास नहीं करना चाहिए और एक ऐसा पूर्वोदाहरण नहीं रखना चाहिए जो दण्ड प्रक्रिया संहिता द्वारा समर्थित न हो (1980–81) [85 सी. डब्लू. एच. (संपादकीय टिप्पण 85)]।

12. क्या उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय का अधिक समय ऐसा संवैधानिक रिट याचिकाओं में नहीं व्यतीत हो जाता जो अंत में खारिज हो जाती हैं ?

भारत में फाइल की गई रिट याचिकाओं में से औसतन 5 प्रतिशत से अधिक सफल नहीं होतीं जब कि पश्चिम जर्मनी के संवैधानिक न्यायालयों में यह प्रतिशत 1.18 ही है।

13. वर्तमान न्यायिक प्रणाली ऐंग्लो सेक्शन विधि शास्त्र पर आधारित है। क्या इसके स्थान पर भारतीय न्याय प्रशासन की स्थापना होनी चाहिए ?

वर्तमान न्यायिक प्रणाली को कभी-कभी ब्रिटिश राज की विरासत के रूप में बताया गया है और ब्रिटिश विधिशास्त्र के मूल्यवान सिद्धांत यथा, विधि के समक्ष समता, न्यायपालिका की स्वतंत्रता और न्यायिक पुनर्विलोकन को उचित स्थान नहीं दिया गया है। हाल ही में अमेरिका के वकील एब्राम्स और अंग्रेज न्यायाधीश लार्ड टेम्पलमैन द्वारा दिए गए भाषण की अन्तर्वस्तु को पूरी शक्ति से देश के लिए विसंगत बताया है तथा इन भाषणों में आमंत्रण को "तीसरी दुनिया की अपनी विधिक प्रणाली के विकास को अवरुद्ध करने वाला मुट्ठी भर न्यायाधीशों, अधिवक्ताओं और पत्रकारों द्वारा मिलता जोड़ने का कार्य" बताया है। (हिन्दुस्तान टाइम्स, 29 दिसम्बर, 1981, पृष्ठ 9)। इसके बावजूद ऐसा कोई ठोस सुझाव नहीं दिया गया है जिससे कि यह पता चले कि न्यायिक पद्धति का भारतीयकरण क्या है ?

14. क्या आप महसूस करते हैं कि उच्च न्यायालय, उन मामलों में अधिकारिता पर पकड़ बना रहा है जिसमें अर्जीकर्ता ने सुसंगत विधि के अधीन उपबंधित समान रूप से प्रभावी उपचार को समाप्त नहीं किया है ?

यह सुस्थापित सिद्धांत है कि एक अर्जीदार को, किसी न्यायालय के समक्ष आने से पूर्व समान रूप से प्रभावी कानूनी वैकल्पिक उपचार को जो असम्यकतः त्रुटिपूर्ण नहीं है, अवश्य समाप्त कर लेना चाहिए। (थान सिंह **बनाम** कलक्टर आफ कस्टम्स, ए. आई. आर. 1964 उच्चतम न्या. 1419, ब्रिटिश आई. एस डब्लू कं. **बनाम** जसजीत सिंह, ए. आई. आर. 1964 उच्चतम न्या. 1451, के. के. श्रीवास्तव **बनाम** बी. के. जैन, ए. आई. आर. 1977 उच्चतम न्या. 1703)। तथापि "समान रूप से प्रभावी" पद से निर्वचन में कठिनाइयां उत्पन्न हो गई हैं। [मालवा वनस्पति एंड कैमिकल कं. लिमिटेड, इंदौर **बनाम** यूनियन आफ इंडिया, 1980 एम. पी. एल. जे. 84, मैटोर सैटेलाइट लिमिटेड **बनाम** आई. टी. ओ. कंपनीज सर्किल–11 अहमदाबाद, (1980) 121 आई. टी. आर. 311 (गुज), तपन कुमार जाना **बनाम** द जैनरल मैनेजर कलकत्ता टेलिफोन्स, 1980 लैब आई. सी. 508, बाबाजी एंड मोती भाई **बनाम** इंसपैक्टर आफ सैंट्रल एक्साइज, 83 सी. डब्लू. एन. 689, रविन्द्रनाथ मुखर्जी **बनाम** एस. आर. दास, 1979 लैब, आई सी 1287, अशोक इंडस्ट्रीज **बनाम** स्टेट आफ बिहार, ए. आई. आर. 1979 पटना 217, धरम सिंह **बनाम** बैंक आफ इंडिया, 1979 लैब. आई. सी. 1079, के. एस. सिद्धलिंगैया **बनाम** कर्नाटक राज्य, ए. आई. आर. 1979 कर्णा. 190] न्यायमूर्ति फ्रैंकफर्टर ने यह महसूस किया कि दस्तावेजों की संख्या को कम रखना आवश्यक है जिससे कि उसका परिमाण उदार न्यायनिर्णयन की रुकावट न बने। इंगलैंड में हाउस आफ लार्डस प्रतिवर्ष केवल 33 अपील की सुनवाई करता रहा है। जब कि अपने न्यायालयों में लंबित मामलों की संख्या को देखते हुए यह आलोचना की जा रही है कि वे किसी भी मामले को स्वीकार करके अधिकारिता पर पकड़ बना कर "नाइट एरेंट की भूमिका ले लेते हैं"।

15. क्या न्यायिक प्रणाली को विज्ञानमय बनाया जाए ?

कंप्यूटर प्रौद्योगिकी और यंत्र मानव के कार्य की प्रवृति ने यह प्रश्न सामने रख दिया है कि "यदि हम चांद पर अपने पैर रख सकते हैं तो क्या हम विवादों को प्रौद्योगिकी के माध्यम से सुलझा नहीं सकते ?" न्यायाधीशों के पैनल के सुदूर मनोविश्लेषण द्वारा अर्थात् उनके पूर्ववर्ती फैसलों के आधारों का अध्ययन करके अपील पर फैसलों के बारे में कंप्यूटर पूर्वानुमान करने के प्रयास किए जा रहे हैं (नीडेड : ए ज्यूडिशियल वैलकम टू टैकनालौजी स्टार वार्स आर स्टेट डिसिजन्स बाइ आन. हौवार्ड टी हार्की, 79 फेडेरल रूल्स डिसिजन, 1979, पृष्ठ 209)।

16. क्या आप महसूस करते हैं कि कुछ ख्यातिप्राप्त अधिवक्ता, ऐसे मामलों में अन्तरिम अनुतोष के लिए निवेदन करने में न्यायालय का समय नष्ट करते हैं जिसमें आवश्यक तत्व नहीं होते और इस प्रकार दैनिक कार्यक्रम में व्यवधान डालते हैं।

अप्रैल 1981 में भारत के मुख्य न्यायाधीश ने चार ख्यातिप्राप्त अधिवक्ताओं को ऐसे अंतरिम स्थगन के लिए एक आवेदनपत्र पर पांच न्यायाधीशों के न्यायपीठ का दो घंटे से अधिक का समय नष्ट करने के लिए फटकारा जो अंततः अस्वीकृत कर दिया गया।

17. क्या वकीलों द्वारा "न्यायपीठ निर्धारण" की प्रथा उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में अपनी जड़ें जमा चुकी हैं ?

उच्चतम न्यायालय के दो न्यायाधीशों ने वकीलों के बीच इस प्रथा की ओर ध्यान आकृष्ट किया है जिसमें वे यह सुनिश्चित करने की कोशिश करते हैं कि कुछ विशेष मामले किसी विशेष न्यायपीठ को ही आबंटित हों और रजिस्ट्री अधिकारियों की मौनानुकूलता से कम आवश्यक मामलों को प्राथमिकता दी जाती है।

18. क्या कुछ अधिवक्ता आसीन न्यायाधीशों से संबंध रखने के कारण 'नकारात्मक व्यवसाय' से धन अर्जन कर रहे हैं क्योंकि उनको केवल इसलिए अधिवक्ता नियुक्त किया जाता है कि कोई विशेष मामला किसी विशेष न्यायाधीश के न्यायालय से स्थानांतरित हो जाए ?

भारतीय विधिज्ञ परिषद् नियम के अध्याय 2 के नियम 6 में यह उपबन्ध है कि ऐसा अधिवक्ता उस न्यायालय में उपसंजात नहीं होगा जो उसके न्यायाधीश से पिता, दादा, पुत्र, प्रपौत्र, चाचा, मामा, भाई, भांजा, चचेरा-ममेरा भाई, पति, पत्नी, माता, पुत्री, बहन, चाची-मामी, भांजी, ससुर, सास, दामाद, साला, बहू, साली के रूप में संबंधित हो। यह अभिकथन किया गया है कि ऐसे मुवक्किल जो यह चाहते हैं कि उनके मामले की सुनवाई किसी विशेष न्यायपीठ द्वारा न की जाए, वे उस न्यायालय में व्यवसाय करने वाले एक नातेदार को नियुक्त कर लेते हैं जिससे कि उनकी ओर से एक वकालत-नामा फाइल करके मामले को स्थानांतरित करा लें।

19. क्या सरकार के अधिक उत्साही सरकारी विभाग न्यायालय के कार्यक्रम में वृद्धि करने के लिए उत्तरदायी हैं ?

जब अन्तर्देशीय राजस्व ने इस प्रश्न पर विचार करते हुए एक अपील का परिशीलन किया कि क्या एक शिक्षिका को, जिसे अपनी ड्यूटी के समय के बाहर किसी अधिवेशन में भाग लेने के लिए 13 (पाउंड स्टर्लिंग) का संदाय किया जा रहा था, उस भत्ते पर कर का संदाय करने का दायी समझा जा सकता है, तो न्यायमूर्ति श्री वाल्टन ने इस भावना को अभिव्यक्त किया कि सम्राट छोटे अपराधियों को पकड़ने में इतना समय और श्रम नष्ट कर देते हैं कि यह कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी कि बड़े अपराधियों को पकड़ने के लिए कोई शक्ति बच नहीं जाती।

20. क्या उच्चतम न्यायालय को सार्वजनिक हित के मुकदमों को प्रोत्साहित करना चाहिए ?

मुम्बई के पटरी पर रहने वाले व्यक्तियों के भी मसरत मामले, दिल्ली में महिला पुनर्वास गृह की परिस्थितियां और आगरा के अनैतिक व्यापार के प्रति मिली-जुली प्रतिक्रिया हुई है। कुछ लोगों ने इसे राजनैतिक प्रदर्शन और पत्रकारों द्वारा देश चलाने का प्रयास बताया है, जब कि अन्य लोगों ने लाखों लोगों को प्रभावित करने वाले मामलों को हाथ में लेने के लिए न्यायालय की प्रशंसा की है।

21. यदि मौखिक बहस को प्रत्येक के लिए आधे घंटे तक ही सीमित कर दिया जाए तो क्या अधिक संख्या में मामलों को निपटाया जा सकेगा ?

हमारे उच्च न्यायालयों की तुलना में जहां कांसल न्यायालय का महीनों तक सम्बोधन करता है, संयुक्त राज्य अमेरिका में उच्चतम न्यायालय किसी भी पक्ष को केवल आधा घंटा ही मौखिक बहस करने की अनुमति देता है। केवल डैसग्रेशन वाले मामले में इसे शिथिल किया गया था जिसमें सामान्य से दुगना समय दिया गया था।

22. क्या एक ऐसी प्रक्रियात्मक अपेक्षा से, जिसमें कांसलों से लिखित वाद-संक्षेप फाइल करने को बाध्यकारी बना दिया जाता है, मौखिक बहस में लगने वाले समय की बचत नहीं होगी ?

अमेरीकी न्यायालयों में मौखिक बहस के लिए आधे घंटे का समय नियत करना इस कारण संभव हुआ है कि वहां वाद-संक्षेप की प्रथा (जिसे ब्रैंडी ब्रीफ कहा जाता है) पर जोर दिया जाता है। वाद-संक्षेप से मामले को सही-सही प्रस्तुत किया जा सकेगा और विवाद की बातें भी कम हो जाएंगी साथ ही नए वकीलों को अनुसंधान का अवसर भी मिलेगा। चूंकि वाद संक्षेपों को विधि पत्रिकाओं में छापना होगा इसका कारण कांसल अधिकांश समय लिखने आदि में व्यतीत करेंगे और न्यायालय में लम्बी विधि रिपोर्टें पढ़ने की प्रथा कम हो जाएगी।

23. क्या कुछ अपीलों को, मौखिक बहस की सुनवाई किए बिना ही निपटा दिया जाए ?

आयोवा के उच्च न्यायालय में, 1973 में 66 मामले प्रस्तुत किए गए थे जिसमें मौखिक बहस नहीं हुई थी और 1974 में यह बढ़कर 128 हो गए। जहां मौखिक बहस की अनुमति दी गई वहां प्रत्येक पक्ष के वकीलों को 10–15 मिनट का ही समय दिया गया और अपीलार्थी के खंडन के लिए पांच मिनट का अतिरिक्त समय। (अपील कंजेशन इन आयोवा : डाइमेन्सन्स एंड रिमेडीज आनरेबल मार्क मैक कोरमिक 25 ड्रैक ला रिवियू 1975–76 पृ० 133)"।

24. क्या उस दशा में विधि का निर्वचन बेहतर नहीं होगा यदि उस नियम को जो अर्थान्वयन के लिए वैध सहायक के रूप में संसद् के वाद-विवाद का उद्धरण देने पर रोक लगाता है, समाप्त कर दिया जाए ?

इंग्लैंड में विधि के निर्वचन की इस प्रतिष्ठित प्रथा को, कि न्यायालयों द्वारा, विधि के निर्वचन या किसी अन्य प्रयोजन के लिए, हैन्सार्ड पर भरोसा नहीं किया जा सकता, अब चुनौती दी जा रही है। लार्ड डेनिंग ने वर्क्स आफ जस्टिस में उद्धृत वाद-विवाद के प्रति निर्देश करके इस बाधा पर विजय प्राप्त करने का एक रास्ता अपनाया। [रेगिना बनाम लोकल कमीशनर, एकसपार्टी ब्रैडफोर्ड काउंसिल (1979) 1 क्यू. बी. 387]। लेकिन हैन्सार्ड से उद्धरण वाली पुस्तकों में देखने की युक्ति की यह कहकर आलोचना की गई है कि यह नैतिक उत्थान करने वाला नहीं है। [स्टैट्यूटरी रिफार्म द ड्राफ्टसमैन एंड दि जज–(1981) 30 आई. सी. एल. यू. 141 पृ. 163] भारतीय विधि ने आंग्ल विधि का ही अनुसरण किया [एडमिनिस्ट्रेटर जनरल आफ बंगाल बनाम प्रेमलाल मल्लिक आई. एल. आर. 22 कलकत्ता 788(पी. सी.)पृ. 799, 800]। किन्तु नियम में कांट छांट करने के पक्ष में दलील दी गई है (स्टेट आफ मैसूर बनाम आर. वी. बिडप ए. आई. आर. 1973 उच्चतम न्यायालय 2555, फागू साब बनाम स्टेट आफ वेस्ट बंगाल ए. आई. आर. 1974 उच्चतम न्यायालय 613 पृ. 629 पर) किन्तु कभी-कभी उस मंत्री के भाषण को भी नहीं देखा जाता जो विधेयक का संचालन करता है (सतपाल एंड कं. बनाम ले. गवर्नर आफ दिल्ली 1979 और एस. सी. सी. 232–245 पर)। लार्ड डैव्लिन ने एक दृष्टांत दिया [स्टेफोर्ड बनाम डी. पी. पी. (1974) ए. सी. 878]। जिसमें यदि लार्डस ने उस संसदीय वाद-विवाद को देखा होता जिसमें उन लोगों में से कुछ ने स्वयं विधायक के रूप में भाग लिया था तो उन्होंने यह अनुभव किया होता कि संसद् का विधि में इतना बड़ा परिवर्तन करने का कोई इरादा नहीं था। [आल सोल्स कालेज, आक्सफोर्ड में 2 मई, 1978 को दिया गया भाषण, जो डेव्लिन, द जज (1979) पृ. 198 पर उद्धृत किया गया।]

25. क्या अनेकत्व और पृथक् निर्णयों की प्रथा के स्थान पर,—

(क) "पर कुरियैम" राय ;

(ख) न्यायपीठ के उच्चतम सामान्य अधिमान का प्रतिनिधित्व करने वाला एक ही निर्णय;

(ग) एक बहुसंख्यक और एक अल्पसंख्यक राय लिखने की प्रथा शुरू की जानी चाहिए ?

दिल्ली विधि अधिनियम वाले मामले में (ए. आई. आर. 1951 उच्चतम न्या. 332) उच्चतम न्यायालय द्वारा दी गई अलग-अलग राय ने मामले में विनिश्चय के आधार के बारे में भ्रांति पैदा कर दी और मुख्य न्यायाधीश पातंजलि शास्त्री ने भी यह अनुभव किया कि कोई विशिष्ट सिद्धांत अधिकथित नहीं किया गया। (काथी रानींग रावत बनाम सौराष्ट्र ए. आई. आर. 1952 उच्चतम न्या. 123) न्या. बोस को विभिन्न स्थितियों का विश्लेषण करने और यह बताने का कार्य सौंपा गया कि न्यायाधीश प्रत्येक स्थिति में

किस प्रकार विभाजित थे । (राजनारायण सिंह बनाम पटना प्रशासन समिति; ए. आई. आर. 1954 उच्चतम न्या. 569) । मौत की सजा की बाबत अनेकत्व विनिश्चय से संयुक्त राज्य अमेरिका में अनेक कठिनाइयां उत्पन्न हो गई । (ग्रेग बनाम जिओजिया, 428 सं. रा. 153 : फर्मेन बनाम जिओजिया, 408 सं. रा. 238) । ऐसी ही बात हमारे उच्चतम न्यायालय में भी हुई (राजेन्द्र प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए. आई. आर. 1979 उच्चतम न्या. 916) । अश्लीलता के विषय में सं. रा. अ. में यह भ्रांति फैली है कि क्या "कामुक अभिरुचि" की परख के स्थान पर "उद्धारक सामाजिक मूल्य" वाले परख ने स्थान ले लिया है (रौथ बनाम संयुक्त राज्य, 354 सं. रा. 476; फैनी बनाम हिल, 383 सं. रा. 413 : संयुक्त राज्य बनाम मार्क्स, (छठे सर्किट के लिए अपील न्यायालय का विनिश्चय जो कोलंबिया लॉ रिविउ, मई, 1980 पृष्ठ 777 में उद्धृत है) । लार्ड डेनिंग को भी प्रिवी काउंसिल में अन्य विधि लार्डों द्वारा अपनी असहमति राय को प्रकाशित करने की अनुज्ञा नहीं दी गई [इन रे : पार्लियामेंट्री प्रिविलेज ऐक्ट, 1770, 1958 ए. सी. 331 लार्ड डेनिंग ; द फैमिली स्टोरी (1981) पृष्ठ 192–194] ।

26. क्या विधि में उस दशा में निश्चितता नहीं आएगी यदि उच्चतम न्यायालय छोटे निर्णय लिखे ?

संयुक्त राज्य उच्च न्यायालय द्वारा मौत की सजा वाले मामले में 243 पृष्ठ के निर्णय की तुलना में हमारे उच्चतम न्यायालय ने, केशव नन्द भारती बनाम केरल राज्य (1973) 4 एस एस सी 225 वाले मामले में 782 पृष्ठों का निर्णय दिया । किन्तु मौत की सजा वाले एक पश्चात्वर्ती मामले में (ग्रेग बनाम जिओर्जिया 428 यू. एस. 158) जब संयुक्त राज्य उच्चतम न्यायालय ने "पर कुरियम" राय लिखने का विकल्प किया तो उससे विधि रिपोर्ट के केवल दो पृष्ठ ही भर सके । लार्ड किलब्रैन्डन ने ये विचार व्यक्त किए हैं कि निर्णय लेखन में संक्षिप्त न होना आंग्ल विधिशास्त्र का एक अवांछनीय लक्षण रहा है । [कैसेल एंड कंपनी बनाम बूम (1972) 1 आल ई. आर. 801 एच. एल.] ।

27. क्या किसी अपील न्यायालय को अनिवार्य रूप से कारणों सहित निर्णय ––

(क) प्रत्येक मामले में लिखना चाहिए चाहे उसका परिणाम कैसा भी हो ?

(ख) उसी दशा में लिखाना चाहिए जब यह निम्नतर न्यायालय के फैसले को उलटता है ?

दाण्डिक अपीलों को एक "खारिज" शब्द लिखकर खारिज करने की प्रथा पर उच्चतम न्यायालय ने अप्रसन्नता व्यक्त की है [के. के. जैन बनाम महाराष्ट्र राज्य ए. आई. आर. 1973 उच्चतम न्यायालय 243, सखाराम बनाम महाराष्ट्र राज्य (1969) 3 एस सी. सी. 730, शेख मो. अली बनाम महाराष्ट्र राज्य (ए. आई. आर. 1973 उच्चतम न्यायालय 43) शंकर बनाम संगूबाई (ए. आई. आर. 1976 उच्चतम न्यायालय 2506] । संयुक्त राज्य अमेरिका के उच्चतम न्यायालय द्वारा छह शब्दों का आदेश "निर्णय की पुष्टि की जाती है" पारित करने की प्रथा को प्रो. जैराल्ड गुंथर ने यह कहकर आलोचना की है कि यह गैर जिम्मेदार और विधि विहीन है (डाक बनाम कामन-वेल्थस अटर्नी, द ब्रदरेन पृष्ठ 425) ।

28. क्या कानून में एक ही अपील की व्यवस्था नहीं होनी चाहिए ?

न्यायालयों में मामलों की भीड़ को देखते हुए ये विचार व्यक्त किए गए हैं कि यदि भूलचूक ही दो अपीलों का मुख्य कारण है तो, मुकदमा लड़ने वाला उस दशा में भी संतुष्ट नहीं होगा यदि कानून में अनेकों अपीलों की व्यवस्था हो ।

29. क्या सार्वजनिक महत्व के विधि के प्रश्न वाले मामले सीधे उच्चतम न्यायालय में पहुंचने चाहिएं ?

न्याय प्रशासन अधिनियम, 1969 (यू. के.) के अधीन कुछ परिस्थितियों में अपील सीधे हाउस आफ लार्ड्स के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं । अमेरिकन साइनामिड कं. बनाम अपजौन कं. [(1970) 3 आल ई. आर. 785] पेटेंट के प्रतिसंहरण के लिए अर्जी से संबंधित एक ऐसा मामला था जो हाउस आफ लार्ड्स द्वारा चुनी गई पहली "लीप फ्राग" अपील थी । लार्ड डैनिंग, हाल ही के एक मामले, ए. सी. टी. कन्सट्रक्शन कंपनी लिमिटेड बनाम कस्टम्स एंड एक्साइज कमिश्नर (1981) 1 डब्लू एल आर 49 पृ. 54 में विभिन्न अधिकरणों द्वारा इस विषय में भिन्न प्रकार के विनिर्णय दिए जाने की संभावना पर दुखित

थे कि क्या टेक लगाने का कार्य, जिसमें अतिरिक्त नींव का निर्माण अंतर्वलित है "अनुरक्षण" शब्द के साधारण और स्वाभाविक अर्थ के अन्तर्गत आता है और इस बात पर आश्चर्य व्यक्त किया कि उस दशा में सीमा शुल्क और उत्पाद-शुल्क प्राधिकारी को क्या करना चाहिए जब उन्हें विभिन्न अधिकरणों के परस्पर विरोधी निर्णयों का सामना करना पड़े ।

30. क्या अन्तर्वर्ती आदेशों के विरुद्ध न्यायिक पुनर्विलोकन, पुनरीक्षण या अपील समाप्त कर दी जानी चाहिए ?

हाल ही में हाउस आफ लार्ड्स ने ये विचार व्यक्त किए कि प्राथमिक विनिश्चय के लिए उनके पास पहुंचने वाले मामलों से न्याय की आवश्यकता पूरी नहीं होती । [एलेन बनाम गल्फ आयल लिमिटेड, (1981) 2 डब्लू. एस. आर. 188 (एच. एल.) पृष्ठ 190] । संयुक्त राज्य अमेरिका में "अंतिम निर्णय भूमिका" का विकास उपलब्ध न्यायिक स्रोत में वृद्धि करने के लिए और पृथक्-पृथक् मुकदमेबाजी से बचने के लिए किया गया है। [यू. एस. बनाम निक्सन 418 यू. एस. 683 पृष्ठ 690 (1974)] इस प्रश्न से कि अन्तर्वर्ती आदेश क्या है और क्या अपील संभव है, अनेक कठिनाइयां उत्पन्न हो गई हैं (अमरनाथ बनाम हरियाणा राज्य, ए. आई. आर. 1977 उच्चतम न्या. 2185 पृष्ठ 2190 ; मोहन लाल बनाम प्रेमचन्द, ए. आई. आर. 1980 एच. पी. 36, 38 पर, प्रणव कुमार बनाम युसुफ अली 1979 सी. आर. एल. जे. 95, 98 पर, इनायतुल्ला रिजवी बनाम रहीमतुल्ला, 1981 सी. आर. एल. जे. 1398) ।

31. यह आलोचना किस हद तक न्यायोचित है कि उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालय को, उसी की अधिकारिता के भीतर आने वाले मामलों में उलट रही है ?

उच्चतम न्यायालय के एक न्यायाधीश ने उच्चतम न्यायालय द्वारा छोटे-छोटे मामलों में हस्तक्षेप किए जाने के तरीके पर दुख व्यक्त किया और यह कहा कि यह सभी अधीनस्थ न्यायालयों की अधिकारिता को अपनी अधिकारिता समझ कर सब कुछ स्वयं करने की कोशिश करता है । यू. के. में प्रिवी काउंसिल ने, अपने 3½ पृष्ठों के निर्णय में एक हत्या वाले मामले में अपील को, काउंसेल द्वारा नई दलील प्रस्तुत करने से इन्कार करने के पश्चात् खारिज कर दिया । [राधो प्रसाद बनाम द कुवीन, (1981) 1 डब्लू एल आर 469] यद्यपि एक अन्य हत्या के मामले में जब उनके समक्ष एक घोर अन्याय होने की बात सामने लाई गई तो प्रिवी काउंसिल ने नई दलील प्रस्तुत करने की इजाज़त दे दी [अजोधा बनाम द स्टेट, (1981) 2 आल ई. आर. 193 पृष्ठ 202] । एक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में मोटर चालन में दोषसिद्धि में हस्तक्षेप करते हुए इंग्लैंड में उच्च न्यायालय में यह विचार व्यक्त किया कि यह पहला मामला था जिसमें क्राउन कोर्ट के दण्ड को इस आधार पर चुनौती दी गई कि यह कठोर और दमनकारी था । (आर. बी. क्राउन कोर्ट, संट एबन्स 181, 1 आल इ. आर. 802–804 पर) अमेरिका के विधि प्राचार्य, अपील न्यायालयों द्वारा अपील मंजूर करने में अपील न्यायालय की प्रवृत्ति पर दुखित हैं और प्रसिद्ध न्यायाधीश की भर्त्सना को उद्धत करते हैं "विचारण न्यायाधीश को अनावश्यक रूप से वानर न बनाएं । यह याद रखें कि वे भी उतने अच्छे विधिज्ञ हो सकते हैं जितने अच्छे आप है ।" (एपीलेट रिव्यू आफ ट्रायल कोर्ट डिसक्रिशन 79 फेडरल रूल्स डिसिजन, पृ. 173-174) कभी कभी हाउस आफ लार्ड्स द्वारा विचारण न्यायालय पर उसके निर्णय को "आश्चर्यजनक" बताकर निन्दा की है । [बी. वी. डब्लू. (1979) 3 आल ई. आर. 83)

32. क्या कानून में अपील के प्रक्रम पर समझौता करने का प्रयास करने को अनिवार्य बनाने का उपबन्ध होना चाहिए ?

सं०रा०अ० में केन्द्र द्वारा वित्तपोषित एक स्कीम दिसम्बर, 1973 में शुरू की गई थी जिसका नाम था "सिविल अपील प्रबन्ध योजना (सी ए एम पी)" और जिसका उद्देश्य यह अभिनिश्चित करना था कि क्या अपील-कार्यभार में, स्वतंत्र अभिकरण द्वारा समझौता कराने के प्रयास से कमी आ सकती है । न्यायाधीश इस बात पर सहमत थे कि सी. ए. एम. पी. ने, अपीलों के निपटारे में लिए गए औसत समय में बचत की क्योंकि

उस विचार-विमर्श से जो स्टाफ कांसल विरोधी पक्षकारों के साथ करता था कांसल की तैयार में सुधार होता था और उससे विवाद में कमी होती थी । [जेरी गोल्ड मैन, एसीसटेंट प्रोफेसर आफ पालिटिकल साइंस नार्थ वैस्टर्न यूनिवर्सिटी, कोलंबिया ला रिव्यू (1978) जि. 78, पृष्ठ 1209] ।

33. ऊपर के प्रश्नों में मुख्यतः नए मामलों की समस्या ही आती है । बकाया मामलों के निपटारे के बारे में आप सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की नियुक्ति को छोड़कर किसी भी अन्य उपाय का सुझाव दे सकते हैं ।

पूर्ववर्ती प्रश्न नए मामलों में कमी करने और विचाराधीन विषयों के निपटारे पर प्रकाश डालते हैं । जहां तक बड़ी संख्या में बकाया मामलों की बात है लगभग एक ही प्रकार की यह राय व्यक्त की गई है कि जब तक पर्याप्त संख्या में न्यायाधीश नियुक्त नहीं किए जाते बकाया मामलों का निपटारा संभव नहीं है ।

34. कोई अन्य विषय ?

न्यायिक प्रणाली से संबंधित सभी समस्याओं को इस प्रकार की प्रश्नावली में समाविष्ट करना संभव नहीं है अतः विषय के किसी भी पहलू पर आपके विचारों का स्वागत है । भारत के मुख्य न्यायाधीश ने न्यायिक संस्थाओं के कार्यकरण के निष्पक्ष विश्लेषण का स्वागत किया है यदि उनके दृष्टिकोण में रचनात्मक परिवर्तन वांछनीय है । (प्रेसीडेंशियल एड्रैस : सेंटेनेरी सिलेब्रेशन आफ नूतन मराठी विद्यालय, पुणे : 1-1-1982) ।

84-M/J(N)175M of LJ&CA—250—23-1-86—GIPS